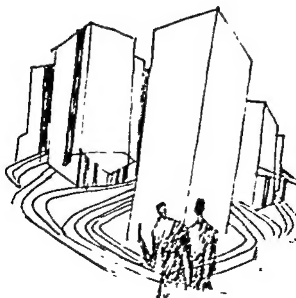
गलियां-गलियारे
(उपन्यास)

गलियां गलियारे

प्रतिमा वर्मा



१. नंदिता

अभी-अभी उस घर से लौट रही हूं—वह घर, जो कभी हमारे अपने ही घर के दूसरे खंड-सा था···राजुल का घर। छलछल, कलकल बहती नदी की जगह अचानक रेत का सूखा धूसर विस्तार दीख जाए, वैसी ही स्तब्धता अपने अंदर महसूस कर रही हूं। समझ नहीं पा रही हूं कि सच क्या है—यह, जो अभी वहां देखा-सुना है या वह, जो अमिट रेखा की तरह मन पर आज तक लिखा हुआ है। वर्तमान को झुठला देने की मनमानी जिद अपने भीतर उमड़ती पा रही हूं, यह जानते हुए भी कि दोनों ही सत्य हैं, खंडसत्य···समय सापेक्ष।···पूर्णसत्य कहीं होता है कुछ? कोई चार साल बाद वहां आज गई थी। कैसा अजनबी चेहरा हो उठा है उस कोने-कोने परिचित मकान का! वह भरा-पूरा अतीत, जिसे दो परिवारों ने लम्हा-लम्हा करके बुना था, दीमक खाया-सा, जर्जर छिद्रों से भरा हो उठा है। यह सोचकर कैसी रुलाई-सी आ रही है कि आज जो है, उसका होना ही सब कुछ है··तेज रोशनी में अतीत का एक भूला हुआ पन्ना भी दिखाई देना मुश्किल!

कैसी उमंग से भरी मैं घर से निकली थी और अंदाज से ही उस फाटक पर जा खड़ी हुई थी। कदमों के लिए रास्ता अनजाना रहा था? छोटी थी, तब मम्मी कहा करती थी—'इस लड़की को तो चाहे आंखों पर पट्टी बांधकर छोड़ दो···सीधे उस घर पहुंच जाएगी···।' आज भी पट्टी ही तो बंधी थी मेरी आंखों पर! अपने ही उत्साहाधिक्य की पट्टी। और फाटक के सामने आकर ठिठक जाना पड़ा। वहां का

१. नंदिता

अभी-अभी उस घर से लौट रही हूं—वह घर, जो कभी हमारे अपने ही घर के दूसरे खंड-सा था···राजुल का घर। छलछल, कलकल बहती नदी की जगह अचानक रेत का सूना धूसर विस्तार दीख जाए, वैसी ही स्तब्धता अपने अंदर महसूस कर रही हूं। समझ नहीं पा रही हूं कि सच क्या है—वह, जो अभी वहां देखा-सुना है या वह, जो अमिट रेखा की तरह मन पर आज तक खिंचा हुआ है। वर्तमान को झुठला देने की बचकानी जिद अपने भीतर उमड़ती पा रही हूं, यह जानते हुए भी कि दोनों ही सत्य हैं, खंडसत्य···समय सापेक्ष।···पूर्णसत्य क्या होता है कुछ? कोई चार साल बाद वहां आज गई थी। कैसा अजनबी चेहरा हो उठा है उस कोने-कोने परिचित मकान का! वह भरा-पूरा अतीत, जिसे दो परिवारों ने लम्हा-लम्हा करके बुना था, दीमक खाया-सा, जर्जर छिद्रों से भरा हो उठा है। यह सोचकर कैसी रुलाई-सी आ रही है कि आज जो है, उसका होना ही सब कुछ है···तेज रोशनी में अतीत का एक भूला हुआ धब्बा भी दिखाई देना मुश्किल!

कैसी उमंग से भरी मैं घर से निकली थी और अंदाज से ही उस फाटक पर जा खड़ी हुई थी। कदमों के लिए रास्ता अनजाना कहां था? छोटी थी, तब मम्मी कहा करती थीं—'इस लड़की को तो चाहे आंखों पर पट्टी बांधकर छोड़ दो···सीधे उस घर पहुंच जाएगी···।' आज भी पट्टी ही तो बंधी थी मेरी आंखों पर! अपने ही उत्साहाधिक्य की पट्टी। और फाटक के सामने आकर ठिठक जाना पड़ा। वहां पा

१. नंदिता

अभी-अभी उस घर से लौट रही हूं। वह घर, जो कभी हमारे अपने ही घर के दूसरे खंड-सा था…राहुल का घर। छलछल, कलकल बहती नदी की जगह अचानक रेत का सूखा धूसर विस्तार दीख जाए, वैसी ही स्तब्धता अपने अंदर महसूस कर रही हूं। समझ नहीं पा रही हूं कि सच क्या है—यह, जो अभी वहां देखा-सुना है या वह, जो अमिट रेखा की तरह मन पर आज तक खिंचा हुआ है। वर्तमान को झुठला देने की बचकानी जिद अपने भीतर उमड़ती पा रही हूं, यह जानते हुए भी कि दोनों ही सत्य हैं, खंडसत्य…समय सापेक्ष।…पूर्णसत्य क्या होता है कुछ? कोई चार साल बाद वहां आज गई थी। कैसा अजनबी चेहरा हो उठा है उस कोने-कोने परिचित मकान का! वह भरा-पूरा अतीत, जिसे दो परिवारों ने लम्हा-लम्हा करके बुना था, दीमक खाया-सा, जर्जर छिद्रों से भरा हो उठा है। यह सोचकर कैसी रुलाई-सी आ रही है कि आज जो है, उसका होना ही सब कुछ है…तेज रोशनी में अतीत का एक भूला हुआ धब्बा भी दिखाई देना मुश्किल!

कैसी उमंग से भरी मैं घर से निकली थी और अभ्यास से ही उस फाटक पर जा खड़ी हुई थी। कदमों के लिए रास्ता अनजाना कहां था? छोटी थी, तब मम्मी कहा करती थीं—'इस लड़की को तो चाहे आंखों पर पट्टी बांधकर छोड़ दो…सीधे उस घर पहुंच जाएगी…।' आज भी पट्टी ही तो बंधी थी मेरी आंखों पर! अपने ही उत्साहाधिक्य की पट्टी। और फाटक के सामने आकर ठिठक जाना पड़ा। वहां था

वह घर ? न लकड़ी के फाटक पर झूलते शांतिफूलों के गुच्छे, न बाहर लकड़ी के तख्ते पर लिखा—'ज्ञानशंकर लाल, एडवोकेट' वाला साधारण साइनबोर्ड। मकान के माथे पर'''वह उसे तब माथा ही कहती थी, बीचोबीच दीवारों की पीताभा के परिपृष्ठ में लाल सीमेंट से लिखा आभूषण-सा 'ज्ञान भवन' भी नहीं। कुछ भी तो नहीं था। कंपाउंड के भीतर का निचाट-विस्तार अदृश्य हो गया था और अदृश्य हो गया था वह कुआं, वह खपरैल वाला बरामदा, जहां देहात से आए हुए मुवक्किल ठहरते थे और शाम को कुएं पर नहाकर उपलों पर दाल-बाटी पकाते थे। जो कुछ दिखलाई दे रहा था, अधुनातन था। अल्यूमीनियम का विशाल चमकदार फाटक, सजा-संवरा लॉन, आउट हाउस, एक आलीशान कोठी और पोर्टिको। एक खूबसूरत तख्ती पर पीतल के अक्षरों से लिखा 'रमाशंकर लाल—बार-एट-लॉ'। मैं बेख्याली में उसे देर तक घूरती रह गई थी'''यह नाम भर ही एक पहचान के रूप में शेष रह गया था। बड़े भैया'''। तब हाल में इंगलैंड से पढ़ाई पूरी कर लौटे थे। वे इतने बड़े वकील हो गए ! मुझमें अब वह उमंग, वह किनारे तोड़ देने वाला उत्साह नहीं रह गया था, फिर भी अंदर बढ़ती चली गई। लेकिन, घर के अंदर जाना नहीं हो सका। एक नौकर ने अनिच्छापूर्वक देखते हुए बाहर रखी कुर्सियों में से एक पर बैठने का इशारा किया और कहा—"मैं बोल देता हूं, आप बैठिए। बड़ी मिस साहब के गेस्ट आए हुए हैं अभी'''।"

कुछ हिचकिचाहट के साथ उसने केबिन-फैन खोल दिया तो इतनी देर के बाद मुझे पहली बार लगा कि इतनी गर्मी में, ऐसी हड़बड़ी में आखिर किसलिए मैं यहां चली आई थी ? पांच बजे भी कितनी तेज धूप है'''पंखा जैसे आग उगल रहा है। मन और आंखों को पहुंचने वाली ठंडक की उम्मीद में गर्मी की जिस तीक्ष्णता को अब तक भुलाए बैठी थी, वह एकाएक सौगुना होकर मुझे पसीने-पसीने कर देने लगी। सामने लॉन में अब तक धूल के बगूले उड़ रहे थे। बोगनवेलिया के झरे हुए पीले और ललछौंहे फूल लॉन-भर में खड़खड़ा रहे थे। इतने फूल-पत्तियों के साथ भी सब कुछ जाने कैसा उजाड़ मरुस्थल-सा लग रहा

था···इससे त्रस्त होकर ही जैसे मैं अतीत के उस ठंडे नीम-अंधेरे में धंसती चली गई···



तब डैडी हाल में ही ट्रांस्फर होकर पटना आए थे। मेरा नाम अभी किसी स्कूल में नहीं लिखा गया था। अपरिचित शहर में अनजाने लोगों को सड़क-किनारे के अपने बरामदे से ताका करती। ऐसे ही एक दिन डैडी ने आकर बतलाया कि ताऊजी के एक वकील दोस्त ने सपरिवार कथा सुनने और खाने को आमंत्रित किया है। मम्मी के पूछने पर उन्होंने जो संक्षिप्त परिचय दिया था, वह मुझे अभी तक याद है—'भैया के क्लासफैलो रहे हैं। पत्नी बड़ी धार्मिक हैं, हर पूर्णमासी को कथा करवाती हैं। दो लड़के और दो लड़कियां हैं। बड़ा बैरिस्टरी पढ़ने विलायत गया है। पुराने रईस लोग हैं···।'

तब हम लोगों का यहां किसी से विशेष परिचय नहीं हुआ था, खासी बोरियत होती थी। वहां जाने की तैयारी मैंने ही नहीं, मम्मी और भाइयों ने भी उत्सुकता से की थी। शाम को हम लोग पैदल ही वहां गए थे। घर पास ही था—चौराहे से दाहिनी तरफ मुड़ने के बाद बाईं ओर के संकरे रास्ते पर, तीन मकानों के बाद। मकान का सादापन और फैलाव, दोनों आकर्षित करते थे। लकड़ी का हरे रंग से पुता हुआ चौड़ा फाटक था, जिस पर बांस की मेहराब के सहारे शांति की फूली हुई बेल बंदनवार-सी बना रही थी। भीतर काफी लंबा-चौड़ा मैदान था। एक तरफ कुआं और खपरैल से छाया हुआ बरामदा। इससे कुछ दूर पर मुख्य इमारत थी। इसके दरवाजे ऊंचे और बरामदे चौड़े थे। इमारत और बाउंड्री वाली दीवार के बीच कुछ पेड़ थे। इतने आयोजन के साथ सत्यनारायण की कथा होते भी मैं पहली बार देख रही थी। काफी भीड़-भाड़ थी। इस बीच मेरी निगाहें बार-बार भूरी पुतलियों, पंखुड़ी जैसे ओठ और बड़े ही खूबसूरत और कोमल नक्श वाली उस लड़की पर अटक जा रही थीं, जो करीब-करीब मेरी हमउम्र थी। वह

पुराने ढंग का लंबा घेरदार फ्रॉक पहने हुए थी। तेल-सने बालों की दो चोटियों में लाल रंग के रिवन थे, जिनसे मुझे उन दिनों खास ही चिढ़ थी। खाना-पीना हो जाने के बाद गृहस्वामिनी ने उसे मेरी ओर हल्के से ठेलकर कहा था, 'राजी, जाओ, देखो! तुम्हारी नयी सहेली है···उससे बातें करो।' वह मेरे पास आकर चुपचाप झेंपती हुई खड़ी हो गयी थी, मुझे ही बात शुरू करनी पड़ी थी। मुझे लगा वह मेरे चमचमाते जूते-मोजे, खूबसूरत फ्रॉक और कॉन्वेंटी लहजे की हिंदी से कुछ न कुछ रोब खा रही थी। यही परिचय धीरे-धीरे इतना प्रगाढ़ हो गया कि हम दोनों का परिवार एक ही सा हो उठा था। जाने कब हम लोगों ने 'ज्ञान भवन' को 'उस घर' कहना शुरू कर दिया था, जैसे वह अपना ही दूसरा मकान हो।—'डैडी उस घर गए हैं।'···'भैया कहां गया, उस घर गया है क्या?'···'उस घर से कछू आया है'···जैसे वाक्यांश दिन में बीसियों बार कानों से टकराते थे। वहां के लोगों के लिए हमारा घर 'उस घर' था। वहां के हॉलनुमा कमरों, पांच-सात नौकरों का वैभव और घर में सबके निश्छल और स्नेहपूर्ण व्यवहार के अतिरिक्त वहां एक भाभी थीं। उनका छोटा बच्चा था। भाभी सबसे खूब मजाक किया करती थीं···ये सारी चीजें मेरे अपने घर में कहां थीं? कभी राजुल हमारे यहां रह जाती, कभी मैं रात में उसके घर सो जाती। खेलते-खेलते देर हो जाती और तय होता कि बस अब जाने की जरूरत नहीं, कोई नौकर जाकर वहां कह आएगा कि निन्नी यहीं रहेगी। थोड़ी देर तक मैं गंभीर चेहरा बनाए बैठी रहती, बार-बार कहती—'डैडी जरूर डांटेंगे···टास्क भी पूरा नहीं हुआ है···।' मगर बस, थोड़ी ही देर। फिर वो धमाचौकड़ी मचती कि राजुल के बाबूजी को बाहर से उठकर आना पड़ता—'अरे भई, आज यह कौन-सा तूफान आ गया है? हल्ला-गुल्ला बंद करो···मुझे काम करना है कि नहीं?'

थमे हुए सन्नाटे के बीच राजुल के छोटे भैया की आवाज सुन पड़ती थी—'और कौन तूफान होगा बाबूजी, वही, राजी की फेवरिट फ्रेंड नंदितादेवी हैं! आज तो जो हो जाए, वही कम है···।'

यह स्वर ऐसे ही उठता था, अचानक, किसी कोने से, और मुझे एक साथ जैसे ढेर-से कांटे चुभ जाते थे। राजुल से भी सुना था, मुझे

लेकर उसे छोटे भैया बहुत चिढाते हैं और वह उनसे खूब-खूब लड़ती है। छोटे भैया के व्यंग्य करने के बाद मैं मुंह लटका लेती और जूते पहनना शुरू कर देती। तभी चाचाजी का स्वर सुन पड़ता—'अच्छा, तो निम्मी आज यहीं रुक गई है ? ठीक तो है···अच्छा है। निम्मी तो बड़ी समझदार है, शोर नहीं होने देगी, क्यों न ?'

'जी···!!' मैं बेहद सीधी तथा समझदार बन जाती थी उसी क्षण। तब भी राजुल के छोटे भैया विजयेंद्र के प्रति मन में आक्रोश समाया रहता। कुछ देर तक मेरा मुंह फूला रहता और राजुल मुझे मनाने के लिए अपने छोटे भैया की कमियां गिनाना शुरू कर देती—'अपने को बड़ा 'हीरो' समझते हैं! खेलने के सिवा और आता ही क्या है उन्हें ? ···उनके दोस्तों को देखो तो एक से एक लफूर!···मैं भी कहूंगी न! एक दिन बाबूजी से डांट न खिलवाई तो कहना!'

मगर, विजयेंद्र कभी नहीं बदले। पूरा घर जब मेरे समर्थन में बोलता, तब यह अकेले मेरे विरोध में खड़े होते थे—'यह कलूटी ?···उंह!'

भाभी कहती, 'हाय बबुआजी! वह काली कहां है ? हां, राजी जितनी गोरी नहीं है···।'

'हुंऽ! अब आप कहेंगी कि देखने में भी अच्छी लगती है···!'

'सो तो लगती ही है···और तेज कितनी है! कितनी प्यारी बातें करती है···!'

'बस, यही है आपकी पसंद···च्च! च्च!'

भाभी ये बातें कभी-कभी मुझे सुना देती थी और कहती थीं कि उन्हें चुप करने का नुस्खा वह जान गई हैं। जहां भाभी ने कहा—'अच्छा, फिर आपकी शादी निम्मी से ही करवाऊंगी···।' वहां झेंपकर वह हट जाते थे। इस बात को लेकर भाभी जब-तब मुझसे भी मजाक कर दिया करती थी।



क्या घर के साथ घर के सारे लोग भी बदल गए हैं ? भाभी अब

वाली मूर्खता के भाव की जगह एक गर्व और शोखी उसके चेहरे पर खेल रही थी। कुछ थोड़ी-सी बातचीत के बाद वह ड्राइंगरूम में बैठे युवक से मुझे मिलाने की बात करने लगी।

"मैं मिलूं ? कौन हैं वे ? मैं जब जानती नहीं, तब···।" मैंने कहा तो वह मुझे खींचती हुई हंस पड़ी, "ओह ! दुनिया कहां से कहां पहुंच गई और तुम हो कि बेकार शर्म कर रही हो। मैं तुम्हें खास तौर से दिखाना चाहती हूं, उनसे मेरी शादी तय हो रही है···।"

"क्या ?···शादी ?···तुम्हारी ? अभी ही ?" मैं हैरान थी।

राजुल हंस रही थी, "नहीं, अभी नहीं होगी। मगर हम लोग मिलते तो रह सकते हैं न !···अभी तो विशाल भी पढ़ रहा है। मेडिकल का आखिरी साल है···।"

मुझे उस सुंदर, स्वस्थ, घुंघराले बालों वाले युवक के पास बिठाकर वह चहककर उससे बातें करने लगी और मैं अपनी निराशा को अपने ही अंदर समेटती लगभग चुप बैठी रही। यह वो राजुल नहीं थी, जिसके साथ गर्मी की पूरी छुट्टियां बिताने का इरादा करके मैं आई थी। यह मेरे मन में बसा वह घर भी नहीं था···उस घर का एक खूबसूरत खंडहर-भर था···एक सुंदर मकबरा, जिसके अंदर अतीत की सुनहरी यादें दफन थीं। □

२. सरोज

वर्षों बाद निन्नी आई तो लगा कि सोई हुई झील में कंकड़ी गिर गई हो। इतने दिन जैसे सोते हुए ही निकल गए। कितना समय बीत गया ! अपनी चपलता और स्नेहभरी मीठी बातों से इस घर के सादे-सपाट माहौल को तोड़-झकझोर देने वाली किशोरी भरे बदन, मोटी आंखों

और सघन मुस्कराहट वाली युवती बन गई है। उसके साथ-साथ जैसे वह बंटा-भूला अतीत ही जुड़ा चला आया हो। उसकी भटकती, इधर-उधर ढूंढती आंखों की दृष्टि के साथ जाने कैसे महसूस होने लगा कि जैसे अभी मांजी आवाज देंगी, बबुआजी आकर कुछ विशेष पकाने की फर्माइश करेंगे, राजुल-मंजुल अपनी-अपनी रिबन लिए मुझसे चोटी गुंथवाने आयेंगी···बाबूजी उठकर इधर आएंगे तो निन्नी से हंसते हुए पूछेंगे, 'निन्नी बेटी, आज क्या पढ़ाई हुई स्कूल में ? तुम्हारी डांटने वाली बहनजी ने कितनों की पिटाई की डांट में···?'

जागती आंखों से सपना देखने लगी थी कि संभल गई। कहां हैं मांजी ! बबुआजी अमेरिका में हैं। राजुल-मंजुल की उन्मुक्त स्वच्छंदता को किसी की अपेक्षा ही नहीं है और, बाबूजी बिचारे तो कभी-कभी दो जन पकड़ते हैं, तब थोड़ा चल पाते हैं। सपना टूटने की कसक आंखों से छलक पड़ने को हुई। इच्छा हुई कि निन्नी को वहीं रोककर कहूं, 'यहां पुराना कुछ ढूंढने की कोशिश मत करो, बेकार दुःख होगा, और कुछ नहीं···।'

पर, कहने की जरूरत नहीं पड़ी, वह खुद ही समझ गई थी। मेरे सामने दूसरी मचिया खींचकर वह चुपचाप बैठ गई। कुछ देर के बाद अपनी निराशा को दूर झटककर धीरे से हंसकर पूछने लगी, "भाभी, आप पर इस भूचाल का कोई असर नहीं पड़ा ? पड़ना तो सबसे ज्यादा आप पर ही चाहिए था !"

ऐसा ही प्रश्न हर मिलने वाले की निगाह में होता है। जिसके पति ने आधुनिकता की नई सीमा-रेखाएं खींची हों, वही उसमें अलिप्त कैसे रह गई ? इस छोटे प्रश्न का जवाब कितना लंबा है और कितना निजी ! क्या उन्हें बतला सकती हूं कि कम उम्र में विवाह कर आई मैं मांजी के प्यार और संस्कार को किसी तरह नहीं भुला पाई ? मुझ पर अपना रंग चढ़ाने की कम कोशिश नहीं की पति देवता ने, पर मुझी से नहीं हुआ। कभी-कभी ओठ-मुंह रंगकर, पल्लू बदलकर उनके दोस्तों की बीवियों में बैठ जाती हूं, मगर यह उनकी जीत नहीं होती। इ[illegible] समझने में उनसे कभी चूक नहीं होती। मेरी आंखों के कोनों अ

निगाह से देखा। फिर अचानक ही बोली, "हवा के इसी तरह चलने से आदमी बहुत थक जाता है न भाभी ?"

मैंने छिपने की कोशिश छोड़ दी। दीर्घ निःश्वास के साथ बोली, "हां निन्नी···बहुत, बहुत थक जाता है !"

मिजाज से जरा भी तो नहीं बदली निन्नी। वही पुराना स्नेह और सौहार्द अभी भी उसकी आंखों में झलकता है। मुझे याद आया, एक दिन मैंने माजी से पूछा था, 'मांजी, आपको तो लड़कियों का बाल कटाना, फ्रॉक पहनना और ज्यादा बोलना अच्छा नहीं लगता, तब भी आप निन्नी की तारीफ करती हैं !'

उत्तर मे मांजी हंस दी थीं, 'सब कुछ क्या बाहरी दृष्टि से देखा जाता है ? भगवान् ने हमें एक चीज अन्तर्दृष्टि भी तो दी है···उसे निन्नी कभी बुरी लगी ही नहीं। और, सबसे बड़ी चीज तो उसका हम लोगों से निश्छल स्नेह है···यहां के लोगों से ही नहीं, एक-एक ईंट और फूल-पौधे से उसे प्यार है।'

अपने साथ-साथ निन्नी का उदास हो उठना मुझे कितना हद तक सकून दे रहा था। तभी बुआजी आ गईं, "कौन है दुलहिन, किससे बातें कर रही हो ?"

मैंने बतलाया तो उन्हें भी खुशी हुई। हम लोगों के परिचित अब यहा आते ही कितने थे ! उसके परिवार का समाचार पूछने के बाद बुआजी बोली, "मैं तो पहले ताज्जुब में पड़ गई कि कौन लड़की आज बिना पाउडर-लाली के यहा आ गई है ! नहीं तो राजुल-मजुल की सहेलियां···राम कहो ! लगेगा कि कहीं नाचने-गाने निकली हैं···।"

बुआजी की खीझ पर मुझे अनायास हंसी आ गई। शादी से पहले लड़कियों के बनाव-शृंगार को वह अच्छा नहीं समझती थीं। कुछ महीने पूर्व बुआजी की बेटी अपनी लड़कियों के साथ आई थी। लड़कियों को बुआजी ने आते ही समझाया था, 'राजुल-मजुल से जहा तक हो, दूर ही रहना···बहुत बिगड़ी हुई हैं दोनों।' लेकिन वे थीं कि आसपास ही मंडराती—'मौसी, यह क्रीम कब लगाते हैं ? यह क्या है···लोशन क्या ? कैसे इस्तेमाल करते हैं इसे ? मस्कारा क्या होता है ?'

ओठों की मुस्कराहट से जो विद्रूपभरी विनम्रता झलकती रहती है, वह सामने वाले को क्या कम असहज बनाती है ? मेरे पति अब मालिक हैं, और अपने सारे मॉडर्न विचारों-कल्पनाओं को उन्होंने घर पर थोप दिया है, इसलिए, सबसे पहले मुझे ही बावली होकर बाल कटवाकर और स्लीवलेस ब्लाउज पहनकर घर से बाहर दौड़ पड़ना चाहिए, यही सबको ज्यादा स्वाभाविक लगता है। मुझसे क्या यह सब इस जन्म में होगा ? मांजी ने जिस विश्वास के साथ धीरे-धीरे करके मुझे यह घर सौंपा था, वह मुझे आज भी एक इंच इधर से उधर नहीं होने देगा। वह कहती थीं, 'औरत परिवार की धुरी होती है दुलहिन, वह जगह से हटी नहीं कि सब गड़बड़ाया···।'

ठीक ही तो कहती थीं वे। कुछ न कुछ बचाकर रखने में सफल तो मैं हुई ही। समर-क्षेत्र में हठर्धमिता की एक दुर्ग-रचना हम लोगों ने कर डाली है—मैं, बुआजी और मांजी के मायके का पुराना नौकर, बिंदा मामा। हमारा इतना कमजोर दुर्ग भी वह नहीं तोड़ पा रहे हैं। कोई न कोई बहाना ढूंढ़कर अब मुझ पर हाथ भी छोड़ने लगे हैं। बुआजी को सरेआम 'पागल' घोषित कर रखा है। हम रोज चोट खाते हैं, रोज घायल होते हैं, पर पराजित नहीं होते। इससे खीझकर वह नये-नये हथियार ईजाद करते हैं।···अनूप को घर से हटाकर होस्टल भेज देना, मंजुल को डांस सिखलाना, राजुल को क्लबों की हवा खिलाना···ये हैं उनके हथियार। खुद रात में शराब के नशे में डोलते हुए आएंगे और मुझे मारेंगे। यही है उनकी आधुनिकता ! क्या यह उतर जाने वाला उफान, कच्चा रंग नहीं है ? क्या होगा तब इसमें रंगकर···?

अपने क्षुब्ध आत्मालाप से मुक्त होने के लिए निन्नी के डैडी-मम्मी, भाई-बहन सबके बारे में पूछने लगी। उसे मांजी की मृत्यु, बाबूजी की बीमारी, बुआ के आकस्मिक वैधव्य और राजुल के इंटर में फेल होने की अनेक घटनाएं गिनाने लगी। मगर यह निन्नी···इसे भी समझ गई है। हर उतार-चढ़ाव को कितनी बेबाकी, कितनी सफाई से पकड़ लेती है यह लड़की ! मेरी बातें सुनती रही। खत्म होने पर मेरी तरफ पैनी

समझने के साथ-साथ अपनी मां से उनकी फर्माइश भी चलती—माई, ये खरीद दो···ऐसे कपड़े सिलवा दो···।'

लड़कियों की मां, और मां से ज्यादा नानी तंग आ गईं। खूब बरसते हुए बुआजी ने कहा, 'बस्स ! तुम दोनों भी घर जाकर मीनाबाजार लगा लेना, जैसा यहां लगा है।—अरे, तुम्हारे यहां भी कोई विलायत घूमकर आया है ? नहीं न ? फिर नकल क्यों करती हो ? इनकी तरह तुम्हें भी बदनाम होना है ?'

बुआजी बेटी को और रोकना चाहती थीं, पर राजुल-मंजुल का जादू जो नातिनों के सिर पर चढ़ रहा था, उससे बचाने के लिए मजबूरन उन्हें जल्दी विदाई करनी पड़ी। उन दिनों उनकी खीझ जिस पराकाष्ठा पर थी, उसकी स्मृति मुझे हो आई। ऐसे में निन्नी उन्हें अपनी विजय का प्रतीक लगी हो तो आश्चर्य ही क्या था ! बुआजी फिर राजुल को पुकारने लगीं। निन्नी बैठी इंतजार करती रहे और राजुल विशाल से गप्पें लड़ाती रहे, यह शायद उन्हें अच्छा नहीं लगा था। अच्छा तो मुझे भी नहीं लग रहा था, पर मैं कर भी क्या सकती थी ? उनकी तरह राजुल को पुकार भी तो नहीं सकती थी। राजुल आकर बुआजी की तरह मुझसे भी वह बैठे, 'क्या भाभी, कोई बैठा हो तो झूठमूठ चिल्लाया करती हैं आप !' उस दिन से मैं बचती थी। बुआजी के जितना आत्मबल भी मुझमें कहां था ! ये उन्हें झिड़कते रहते, नौकर-चाकर सचमुच पागल समझकर हंसी उड़ाते, पर वह थीं कि अपने मन की कर ही गुजरती थीं। राजुल को आने में देर हुई तो बुआजी मेरे पास आकर खीझ उतारने लगीं, 'बताओ, बचपन की सहेली आकर बैठी है और वह है कि आ ही नहीं रही। हद है बेशर्मी की···! और तुम भी बहूरानी, रमा को समझाती नहीं हो···लड़की का मामला है। मान लो, कुछ ऊंच-नीच हो गया, तब ? लड़का लाख सोने का पुतला हो, घर की और लड़की जात की कुछ मर्यादा भी होती है या नहीं ?···यह बात आखिर राजी को कौन समझाएगा ? जब देखो, उसी लड़के के संग बैठी है, घूम रही है, ही-ही ठी-ठी कर रही है !'

बुआजी पूरे समय बेचैन रहती हैं। पूजा के समय को छोड़कर या

जब बाबूजी के पास होती हैं, वो कभी एक जगह टिककर बात नहीं करती। राजी की शिकायत करती-करती वे अपने कमरे की ओर बढ़ गईं। निन्नी चकित, प्रश्न-भरी दृष्टि से मुझे देख रही थी। मैंने कुछ झेंपते हुए बताया, 'एक अच्छा लड़का है, राजी की उसमें शादी-वादी की बात चल रही है···।'

'तो···वही आए हुए हैं ?'

उसकी हैरानी उचित ही थी। हम लोगों के खानदान या बिरादरी में ऐसी बात किसी ने आज तक सुनी थी ? और राजी तो निन्नी से छोटी ही है कुछ···।

निन्नी भी शायद मेरी उलझन को समझ गई थी। कुछ क्षण रुक-कर उसने पूछा, 'बुआजी को वह लड़का पसंद नहीं है क्या ? बड़ी नाराज लगती हैं।'

'बुआजी लड़के से नहीं, शादी तय करने के इस तरीके से नाराज हैं···।' कहते हुए मैं बनावटी हंसी हंसी—'अब हम लोग तो पुराने जमाने के हैं न, ये आजकल के जमाने की बातें कुछ अजीब लगती हैं··।'

निन्नी ने इस पर कुछ नहीं कहा। तभी बुआजी आकर हल्ला करने लगीं—'राजी अभी तक नहीं आई ?'

वह फिर ड्राइंगरूम के पास जाकर राजुल को पुकारने लगीं। राजुल झुंझलाई हुई-सी बाहर निकली। शायद वह बुआ को कुछ कहती, पर तभी निन्नी पर उसकी निगाह पड़ी और वह ठिठक गई। वह निन्नी को पहचान पाती, इसके पूर्व निन्नी ही चकित स्वर में बोल उठी, 'सचमुच तुम राजी ही हो ! विश्वास नहीं हो रहा है···!··· मुझे तो तुमने पहचान ही लिया होगा, मैं निन्नी हूं।'

'अरे निन्नी···तुम !'

वे दोनों गले मिल रही थीं तो बुआजी दूर से मुस्करा रही थीं। मुझे भी तसल्ली हुई। न जाने क्यों मुझे भय हो रहा था कि राजी तनी हुई आएगी और भवों पर बल डालकर पूछने लगेगी—निन्नी···कौन निन्नी ? आइ डोन्नो बाबा !

आजकल 'आइ डोन्नो' उसका तकियाकलाम बन गया था।

कुछ देर के बाद राजुल निन्नी को भी विशाल के पास खींच ले गई तो बुआजी मेरे पास आकर भुनभुनाने लगीं, "देख रही हो दुलहिन···हया-शर्म का नाम ही नहीं है। कूदकर अपने दूल्हे को दिखाने ले गई है! एक हम लोग थे। बारात आ गई तो सहेलियों ने पकड़कर खिड़की से झंकवा दिया—'लो, अपने दूल्हे को देखो···' एकदम उलटी हो गई है दुनिया।"

दुनिया उलटी हो या न हो, इस घर में तो सब कुछ उलट-पुलट हो ही गया था! □

३. विशाल

सुबह उठते ही आजकल जो पहला ख्याल दिमाग में कौंधता है, वह राजुल का होता है···एक सुंदर फूल जैसे खिल गया हो और एकाएक सुगंध फैल गई हो। देर तक मैं इस सुगंध में डूबा तृप्त-सा लेटा रहता हूं। पढ़ाई और कॉलेज को बेमन से निबटाकर राजुल से मिलने की तैयारी शुरू कर देता हूं। वही कुछ क्षण सार्थक प्रतीत होते हैं। उसके घर जाना अब मेरी दिनचर्या में शामिल हो गया है। उसे देखते जी ही नहीं भरता। एक दिन न मिलूं तो सब सूना-सूना, उचाट-सा लगता है। आइ लव हर! ऐसी परफेक्ट ब्यूटी कभी-कभी ही देखने को मिलती है···। हॉस्टल के मेरे दोस्त रश्क से मुझसे कहते हैं, 'बड़े लकी हो यार! ऐसी बीबी, साथ में इतना बड़ा घराना किसे मिलता है!'

मैं मुस्कराकर कहता हूं—'यहां किसी से कम हैं क्या? देखने में लो या बड़प्पन में, उनसे कम नहीं ठहरता···रमाशंकर साहब ऐसे-वैसों को लिफ्ट नहीं देने वाले हैं।'

सब चुप हो जाते हैं। कहें भी क्या! शहर में रोमियो-जूलियट

की तरह अपना किस्सा भी मशहूर होता जा रहा है। राजुल के साथ जिधर निकल जाता हूं, सुन पड़ता है—'वाट ए ब्यूटिफुल पेयर'''!' उस वक्त मुझे जो खुशी होती है, उसका क्या पूछना! सोचता हू कि राजुल जैसी लड़कियों के लिए ही पुराने समय में स्वयंवर होते होंगे। बड़ी मुश्किल से किसी के गले मे जयमाला पड़ती होगी। पर मेरे लिए कोई कठिनाई नही हुई।

बख्शी साहब के जज बनने की खुशी मे क्लब मे हुई पार्टी के दौरान उसे पहली बार देखा था। लड़कियां क्लब में वैसे भी अधिक नही आती थी। जो आई थी, उनके बीच वह सबसे अलग ही चमक रही थी। हर निगाह उसी पर टिकी हुई थी। मैं तो देखकर जैसे खिचता हुआ उसके करीब चला गया'''और कुछ नही सूझा तो उसे और उसके साथ की औरतों की प्लेटो मे परोसने लगा। वह ओठो पर हल्की-सी मुस्कराहट लिए हुए 'थैक्स' या 'नो थैक्स' कहती तो मेरे ऊपर नशा-सा सवार हो जाता। मैं स्वयं भी उस दिन सयोगवश ही अंकलजी के साथ क्लब चला गया था। वहा किसी को पहचानता कहां था'''? मगर, मैं अपने को इस परिचय का श्रेय नही दे सकता। जो कुछ किया, रमाशकरजी ने किया। वह इतने आजादख्याल न होते तो बात खाने और परोसने से आगे शायद ही बढ़ पाती। मैं तो मायूस हो रहा था कि अब शायद कभी इस लडकी से मुलाकात न हो पाए। रमाशकरजी ही मेरी दिलचस्पी भांपकर इधर-उधर पता लगाने लगे थे—'हू इज दैट यग ब्वाय?' आखिर अंकल को उन्होने ढूढ निकाला और मुझे साथ लेकर घर आने का निमंत्रण दे डाला। फिर तो उन्होने सीधे-सीधे ही बात कर डाली, 'दैट विल बी ए गुड मैच नो डाउट'''क्यों सिन्हा साहब, आपकी क्या राय है?'

अंकल ने राय देने की जगह मेरे माता-पिता और परिवार की बात बतलाई थी। हसते हुए बोले थे, 'अरे भई, इसके यहां तो एक जेनरेशन पहले से ही लव मैरिज चल पड़ा है। भाई ने भी पंजाबन से शादी की है।'''मैं क्या राय दूगा!'

दोनों खूब खुश होकर हंसते रहे। रमाशकरजी ने मेरी तरफ एक

मुस्कराहट उछाली, 'वट कम्पलीट योर स्टडीज फर्स्ट'''वीच के पीरियड को कोर्टशिप समझो'''हा: हा: हा: ! लड़के भी कहीं शर्माते हैं ? भई, वोथ ऑव यू आर एजुकेटेड एंड विलांग टु गुड फैमिलीज़'''वी कैन ट्रस्ट यू'''! क्यों सिंह साहब ?'

सिन्हा साहब, अंकल, इसका विरोध करके अपना पिछड़ापन क्यों जाहिर करने जाते, सो वह भी मुस्करा दिये थे, 'सर्टेनली ! वाय नॉट ! उस दिन को याद करता हूं तो यकीन ही नहीं होता कि इतनी आसानी से भी बात बन सकती है ! शुरू से ही हम यह मानकर चले थे कि हमारी शादी तो होनी ही है। राजुल को साथ लेकर इधर-उधर घूमना बहुत अच्छा लगता है। गर्व के मारे सीना चौड़ा हो जाता है। जमीन से दो वालिश्त ऊपर पांव रहते हैं। वस, चाहता हूं कि उसके साथ मुझे अधिक से अधिक लोग देखें और जलें'''खूब जलें। अपना जयघोष करना किसे अच्छा नहीं लगता होगा ?'

आठ-दस दिन पहले राजुल ने अपनी एक वचपन की सहेली से मुलाकात करवाई। साधारण संकोची लड़की थी। ठिगना कद, भरा-भरा वदन और मोटी आंखें। लगा, जैसे घर के कपड़ों में ही उठकर चली आई हो'''दिखावे का तनिक भी आग्रह नहीं। राजुल की दूसरी सहेलियों से एकदम अलग थी वह। जैसी कि मेरी आदत है, मैंने सुंदरता वाले मापदंड से उसे परखना शुरू किया, मगर थोड़ी देर वाद ही लगा कि मापदंड गलत चुन लिया गया है। उसमें देखने-परखने की जो चीज है, वह चेहरे की वनावट और शारीरिक सुंदरता से अलग कोई चीज है— व्यवहार की सहज शालीनता, प्रखर व्यक्तित्व और सबसे बढ़कर सब कुछ समझती-वोलती-सी आंखें। मेरे लिए यह एक नई अनुभूति थी। मैं वेहद उत्सुक होकर उससे वातें करने लगा। उस पर प्रभाव डालने की कोशिश करते हुए मैंने अपनी वेहतरीन मुस्कराहट के साथ कहा, 'आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई नंदिताजी'''!'

'होनी ही चाहिए'''लैला की गली का तो कुत्ता भी प्यारा होता है !' वह तपाक से वोली और हंस पड़ी। मैं निरुत्तर होकर उसका मुंह ताकने लगा। उसी ने कहा, 'वुरा तो नहीं मान रहे हैं मेरी वातों

का ? आपसे मजाक का रिश्ता निकल आया है न···!'

'नहीं साहब, आप जैसी विभूतियों के दर्शन क्या रोज होते हैं ?'

हम सबने साथ चाय पी। थोड़ी देर के बाद वह चली गई। राजुल उसे बाहर तक छोड़ने गई तो मैं भी उठकर साथ हो लिया। लौटकर आया तो बैठते ही राजुल ने कहा, 'वाह ! खूब चहक रहे थे उससे तो···।'

'नहीं तो, मैं तो खूब संभलकर बातें कर रहा था···।'

शुरू से ही निन्नी बड़ी तेज है···राजुल उसकी प्रशंसा कर रही थी या शिकायत, यह बाद में पता लगा, जब उसने कुछ उपेक्षा के साथ कहा, 'अब जाने कैसी लीचड़ जैसी रहने लगी है ! पहले बड़ी वेल-ड्रेस्ड रहती थी। इसके फादर भी कोई मामूली आदमी नहीं, डिस्ट्रिक्ट जज हैं···तब भी···।'

मैं जाने किस रौ में कह गया, 'लीचड़ माने क्या ? अजी मिस साहिबा, भले घरों की नाइंटी एट परसेंट लड़कियां यहां ऐसे ही रहती हैं···आप हैं कहां ?'

राजुल को जाने क्या लगा, वह मेरी ओर चिढ़कर देखने लगी। फिर बोली, 'मानी कि हम लोग तो भले घर की हैं ही नहीं !'

'नहीं-नहीं···तुम लोग बाकी दो परसेंट में हो···।' मैंने अपनी भूल सुधारने की कोशिश की। अपरोक्ष रूप से ही सही, राजुल के सामने मैंने नंदिता का पक्ष लेकर भूल की थी। राजुल खुश नहीं हो सकी है, यह जानकर मुझे खिन्नता तो हुई, पर गुस्सा भी आने लगा। ऐसी भी क्या तुनुकमिजाजी है कि उसके सामने सही बात को कोई सही भी न कह सके ! पूरे समय या तो उसकी तारीफ करते रहो, या किसी एक्टर-एक्ट्रेस की···ऐसी एकरसता भी किस काम की !



इसके तीसरे दिन नंदिता एक बार फिर दिखाई पड़ी। रूपक सिनेमा के कंपाउंड में वह आठ और दस साल के दो बच्चों के साथ

खड़ी थी। मैं एक दोस्त के साथ पिक्चर देखकर निकल रहा था। हल्के मेकअप और अच्छे कपड़ों में वह आकर्षक दीख रही थी।

'एक्सक्यूज़ मी ! आप नंदिताजी ही हैं न···कहीं मुझे धोखा तो नहीं हो रहा है ?'

मैंने करीब जाकर पूछा तो वह हंसने लगी, 'आप भी खूब मजाक कर लेते हैं ! जी, मैं नंदिता ही हूं। दीदी ने जाने नहीं दिया, पूरे महीने के लिए रोक लिया···।'

'तो अपनी दीदी के साथ आई हैं ?'

'हां, वो टिकट लेने गई हैं···जीजाजी शायद सिगरेट ले रहे हैं··· ये बबलू-बंटी हैं।···अंकल को नमस्ते करो बंटी !'

बंटी ने कुछ लजाते हुए मुझे नमस्ते किया, जिसके उत्तर में मैंने छोटे वाले का गाल थपथपा दिया। बड़े, बबलू, ने पूछा, 'आप पिक्चर देखकर निकले हैं अंकल ? कैसी है ?'

'अच्छी है···तुम्हें मजा आएगा।'

'क्रिकेट मैच भी दिखाया है न ?'

'हां···।'

वह नंदिता का हाथ खींचने लगा—'मौसी, जल्दी चलो न, मैच छूट जाएगा···।'

'अरे, टिकट तो आने दो···।' नंदिता ने उससे कहा; फिर मुझसे पूछा, 'और, राजुल के मिजाज कैसे हैं ?'

'मिजाज सातवें आसमान पर हैं, बाकी सब ठीक है।' मैंने कहा, जिस पर वह हंसी में फूट पड़ी। हम दोनों साथ-साथ रुक-रुककर हंसते रहे···सहज और उन्मुक्त हंसी। हंसी रुकने पर जाने क्यों लगा कि हम दोनों हंसी की इस तरंग में बहते हुए करीब आ गए हैं।

बच्चे फिर मुझसे क्रिकेट मैच के बारे में पूछने लगे कि कौन खेल रहा था, किसने चौका और छक्का लगाया। घर छोड़कर होस्टल आने के बाद कहीं ऐसी पारिवारिक बातचीत में घुला-मिला हूं, यह याद नहीं आया। राजुल के घर भी एक दूरी, एक औपचारिकता का वातावरण बना रहता था। सच तो यह था कि मेरा अपना घर भी आधुनिकता

के नाम पर बंद खानों वाले डब्बे में बदलता जा रहा था। मुझे आज इन छोटी-मोटी, लगभग बेसिर-पैर की बातों में नये ही तरह का आनंद मिल रहा था।

नंदिता के जीजाजी पहले आए, फिर जीजी। जल्दी-जल्दी में रस्मी-सा परिचय हुआ। चलते-चलते उन्होंने एक लड़के के बारे में पूछा, जो मुझसे सीनियर था और अब पास होकर हाउस सर्जन हुआ था।

'उसे जानता तो हूं, मगर ठीक से नहीं···।' मैंने कहा, 'क्या जानना चाहते हैं उसके बारे में ?'

'जितना कुछ जाना जा सके।' वह बोले। कहने के ढंग से लगा कि मामला शायद शादी-ब्याह का था; पर, मैं ज्यादा कुछ पूछ नहीं सका।

'अच्छा, पता लगाऊंगा···।' मैंने कहा।

'सो मैनी थैंक्स···।' वह बोले, 'लेकिन फिर घर तक आने की जहमत भी आपको एक दिन करनी पड़ेगी। राजुल के घर से दूर नहीं है। और जनाब, आने का आपको अफसोस नहीं होगा' 'मेरी श्रीमती-जी कुछ बड़े स्पेशल डिशेज बनाती हैं···।'

मुस्कराते हुए उन्होंने अपने घर का पता बतलाया।

'तो आप आ रहे हैं, टालिएगा मत इसे!' नंदिता ने भी बड़ी आत्मीय मुस्कराहट के साथ हाथ जोड़े थे।

राजुल से जब मैंने बतलाया कि आज मैंने नंदिता को रूपक सिनेमा में देखा था, अपनी बहन के साथ पिक्चर देखने आई थी तो उसके चेहरे की पेशियां कस गईं। वह तुरत बोली, 'अच्छा, अभी यहीं है ?··· देखो, आई भी नहीं!'

मुझे निराशा का झटका-सा लगा···कैसा विकृत दर्प, ओछापन-सा आ गया था राजुल के खूबसूरत चेहरे पर! जाने क्यों, उसे और खिझाने की इच्छा होने लगी। मैंने कहा, 'मिलने तो तुम्हें जाना चाहिए था··· वह यहां आई थी। मिलने से पहले तुमने घंटा-भर इन्तजार भी करवाया ···अपने यहां आने का निमंत्रण इतने प्यार से दे गई···।'

राजुल का चेहरा तमतमा उठा—वह कड़वे स्वर में बोली, 'बचपन की हर बात बड़े होने पर भी उतनी ही इम्पॉर्टेंट लगे, यह क्या जरूरी है विशाल ?···और तुम, अब हर किसी से मेरी तुलना करने लगे हो ···पहले तो नहीं करते थे।'

मैंने ताज्जुब से उसे देखा। ईर्ष्या क्या से क्या बना देती है आदमी को ! तब भी मैंने हंसकर ही कहा, 'एक काम करो राजुल, जरा अपना चेहरा शीशे में देख आओ···फिर बातें करते हैं; और हां, फ्रिज से एक गिलास ठंडा पानी मुझे भिजवा देना, तुम भी पी लेना···।'

'मुझे इस तरह की बातें अच्छी नहीं लगतीं···समझ लो विशाल !'

वह झल्लाकर उठ गई थी। थोड़ी देर बाद आई तो उदास दीख रही थी। मुझे उस पर फिर प्यार आने लगा। मैंने कहा, 'अरे, इतनी-सी बात पर चिढ़ गई हो, सिर्फ यह कहने पर कि तुम्हें नंदिता के घर जाकर मिलना चाहिए था···हैरत है !'

'नहीं, तुम पर उसका भूत ही सवार हो गया है···। जिस दिन से उससे मिले हो···।'

'पागल हो गई हो ! कहां तुम और कहां वह···। हद है ! अभी शादी भी नहीं हुई और तुम बीवियों की तरह मेरे पीछे पड़ गई हो ! किसी का नाम लेना भी गुनाह है···।'

मैंने हंसकर ही कहा, मगर राजुल चिल्ला पड़ी, 'अच्छा हुआ कि शादी से पहले ही आपका स्वभाव समझ में आ गया···। एंड नाउ, गुड बाइ···!'

वह तमककर उठ खड़ी हुई। मैंने सुलह का हाथ बढ़ाते हुए कहा, 'अरे वाह ! हम बाहर नहीं चल रहे हैं आज ?'

'नहीं···!!'

'अच्छा, वाट अबाउट टुमारो ?'

'कल भी नहीं, परसों भी नहीं···आपके साथ घूमना-फिरना क्या गलत नहीं है ?'

उसने मुझे रूठी आंखों से देखा, जैसे चाह रही हो कि मैं इस मुद्दे पर उसकी खुशामद करूं, मगर मेरे भीतर का एक अनाम गुस्सा फन

उठाकर खड़ा हो गया था···क्यों करूं उसकी खुशामद ! इतना गर्व भी क्या अच्छी बात है ? अपने-आपको वह समझती क्या है ? मैंने भी उठते हुए कहा, 'ऐज यू प्लीज !···मैं फोन करूंगा, मूड चेंज हो जाए तो बतला देना···।'

अगला दिन ही रविवार था। मैंने हाउस सर्जन लड़के के बारे में पता लगाया और अंकल के घर जाने की जगह नंदिता के घर ही चल पड़ा। उस वक्त दिन के लगभग ग्यारह बजे थे। वहां पहुंचा तो बाहर दोनों बच्चों में से एक खड़ा मिला।

'क्यों, उस दिन पिक्चर में क्रिकेट मैच देखा या नहीं···?' मैंने पूछा।

उसने कहा, 'पूरा नहीं देख पाया अंकल, देर हो गई थी न··· आइए, बैठिए।'

उसने एक कमरे में मुझे बिठाकर पंखा खोला और भागकर अंदर चला गया। ड्राइंगरूम की सज्जा साधारण थी। बेंत की कुछ गद्देदार कुर्सियां, कालीन बिछी हुई एक तख्त, किनारे एक मेज पर रखा हुआ रेडियो, पुराने मेक की एक दीवार घड़ी। इसके अलावा कुछ तस्वीरें और कैलेंडर थे, जो दीवार की शोभा बढ़ा रहे थे।

नंदिता की दीदी बच्चे के साथ तुरंत ही आती दिखाई दीं। पास बैठते हुए उन्होंने कहा, 'ये पूजा कर रहे हैं जरा···आप बैठिए। हम लोगों को यकीन नहीं था कि आप सचमुच आएंगे।'

'क्यों, क्या मैं झूठा नजर आता हूं ?' मैंने कहा तो वह झेंप गईं।

'मेरा यह मतलब नहीं ··आप लोग नये जमाने के हैं न···और हम लोग···।'

उनका बातूनीपन और हंसी की मुद्रा मुझे भी बात करने के लिए उकसा रही थी। मैंने कहा, 'आजकल तो न कोई नया रह गया है, न पुराना, सब मिला-जुला माल है, टेरीकॉट की तरह···बस, परसेंटेज_

ज्यादा या कम होने की बात है ।'

वह हंसने लगीं ।

'नंदिताजी कहां गई हैं, दिखाई नहीं दे रहीं ?' मैंने पूछा तो उन्होंने बतलाया कि वह राजुल के घर ही गई है । कल राजुल मिलने आई थी और उसे बुला गई थी ।

'अच्छा, राजुल आई थी ?' मैंने कहा—मैंने कहा कि उसे आकर मिल लेना चाहिए तो मुझ पर उखड़ गई थी···है वो भी एक ही झक्की !'

दीदी कहने लगीं, 'नहीं, राजुल तो बड़ी सीधी लड़की है । मगर आजकल ज़माने की हवा ही कुछ ऐसी है—और ऊपर से रमा भैया की अंग्रेजी शिक्षा···वैसे तो उसकी मां जब तक थीं, लगता ही नहीं था कि दो परिवार हैं···सब अपने-अपने व्यवहार की बात होती है ।'

थोड़ा रुककर वह सहास्य बोलीं, 'कुछ गरूर आपकी वजह से भी आ गया होगा···ऐसा सुंदर वर क्या सबको मिलता है ?'

'यह कही आपने मेरे मन वाली बात !' मैं जोर से हंसकर बोला, 'मैं भी सोच रहा हूं कि राजुल की मक्खनबाजी कम कर दूं, गरूर खुद-ब-खुद कम हो जाएगा···।'

वह गंभीरता से बोलीं, 'अरे नहीं, यही तो उम्र है । शादी के बाद क्या तो आप मक्खनबाजी करेंगे और क्या बिचारी गरूर करेगी···!'

कुछ और बातों के बाद उन्होंने कहा, 'आज खाना यहीं खाइए, होस्टल के खाने से थोड़ा चेंज हो जाएगा···राजुल के नाते आप भी तो अपने ही हुए और पहली बार आए हैं ।'

मैं मना करने ही जा रहा था कि प्रोफेसर साहब आते दिखलाई दिए । वह दूर से ही कहते आ रहे थे, 'अरे, खाएंगे कैसे नहीं···तुम पहले चाय तो भिजवाओ ! कि ठंडा चलेगा, क्यों डॉक्टर साहब ? और सुनाओ, तुम लोग तो एग्जाम की तैयारी में लगे होगे आजकल··· सुना है कि तुम्हारे कुछ प्रोफेसर प्रिंसिपल के खिलाफ बहुत हो-हल्ला कर रहे हैं ?'

मेडिकल कॉलेज, यूनिवर्सिटी और पॉलिटिक्स का मुद्दा इसके बाद

अनजाने आ गया। हम देर तक इस पर बात करते रहे। इस बीच चाय के साथ नमकीन बिस्किट और साबूदाने का पापड़ नौकर रख गया था। खाते हुए मैंने उस लड़के के बारे में उन्हें बतलाया, फिर पूछा, 'कुछ शादी-ब्याह की बात है क्या ?

'हां, ऐसा ही है। नंदिता के लिए बात चल रही है। यह हुआ कि लड़के वाले शायद उसे देखना चाहें, इसीलिए रोक लिया है—बार-बार कहां छपरा से दौड़कर आएगी।'

'वैसे तो लड़का और फैमिली ठीक ही हैं···।' मैंने कहा तो वे बोले, 'देखो, क्या होता है। मेरा खयाल है कि तुम भी फाइनल देने के बाद शादी कर लोगे ?'

'अभी इतनी जल्दी चाहता तो नहीं हूं, मगर ये लोग प्रेस कर रहे हैं।' मैंने कहा, 'शादी मीन्स जिम्मेवारी, और, अभी मेरी और राजुल की उम्र ही क्या है ? फिर, अभी हमने एक-दूसरे को ठीक से समझा भी नहीं। मैं तो समझता हूं कि साथ-साथ कुछ दिन घूमने और पिक्चर देखने-भर से किसी को नहीं जाना जा सकता···आपका क्या खयाल है ?'

प्रोफेसर साहब ने बड़े गौर से मेरी बात सुनी, फिर बोले, 'पता नहीं भाई ! मैंने तो लव मैरिज की नहीं, क्या बतलाऊं ··बट, मोर देन फिफ्टी परसेंट ऑव सच मैरिजेज टर्न टु फेल्योर ! सुनने में तो यही आता है···।'

'लेकिन, सेटल्ड मैरिजेज भी कुछ कम असफल तो नहीं होतीं···!'

'हांआऽऽ। मगर उस हालत में दूसरों को दोष देने का रास्ता तो खुला रहता है न। कम-से-कम आत्मप्रताड़ना का शिकार नहीं होना पड़ता है···।'

यह एक नया दृष्टिकोण था और मैं इस पर अनजाने सोचने लगा।

खाने के समय तक नंदिता आ गई थी। उसने चौड़े काले किनारे की साड़ी पहन रखी थी, काला ब्लाउज। हाथ में कई रंगों की चूड़ियां और ढीले-से जूड़े में खुपे दो गुलाब···इस बार एक और ही नया आकर्षण उसमें था।

'अरे वाह ! आप यहां···!!' उसने अभिवादन कर कहा। मैंने भी पूरी हार्दिकता के साथ कहा, 'आप बुलायें तो कौन आने से इन्कार करेगा···!'

'आप यह भी भूल गए कि आपको जीजाजी ने बुलाया था···! मैंने नहीं !' वह गर्दन झुकाकर धीरे से हंसी।

'मगर आपने मना भी तो नहीं किया···मौन स्वीकृति का सूचक होता है ··।' मैंने कहा। प्रोफेसर साहब जोर से हंस पड़े, 'और क्या, प्रेरणा तो आप ही थीं। लीजिए, अब हमारी मेजॉरिटी हो गई। देखें, दो-दो जीजाओं से कैसे निबटती हैं आप···!'

फिर तो कुछ देर हम दोनों ने मिलकर उसे खूब खिझाया। आखिर वह 'उंह' करके आंखें तरेरती अंदर भाग गई।

खाने की टेबल पर गुलदस्ते में नंदिता के बालों वाले दोनों गुलाब देखकर मैंने अचानक हाथ रोक लिया, 'मैं एक शर्त पर खाऊंगा···।'

'क्या··क्या ?' दीदी और प्रोफेसर साहब ने चिंता के साथ मेरी तरफ देखा तो मैंने नंदिता की ओर इशारा करके कहा, 'ये गुलाब जहां से आए हैं, वहीं वापस जाने चाहिए···।'

'बिल्कुल ठीक !' प्रोफेसर साहब ने जोर से समर्थन किया, 'निन्नी, उठाओ इन्हें और वापस जूड़े में लगाओ···हम लोग तो तुम्हें देख-देखकर खाना खाएंगे, इस साले गुलदस्ते को कौन देखता है ?'

नंदिता का चेहरा शर्म से गुलाबी पड़ गया। गुलाब उठाकर उसने अपने बालों में खोंस लिया और निगाहें नीची करके खाना परोसने लगी। पता नहीं क्यों, मैं देर तक मुग्ध-सा उसे देखता रह गया। नहीं, राजुल से नंदिता की कोई तुलना नहीं थी, पर, ये ही चीजें कहीं राजुल में होतीं तो युग का इतिहास रच देतीं।···राजुल के साथ के दस महीनों में एक भी ऐसा दिन, ऐसा पल आया था ? तृप्ति का जो संसार यहां इतनी ही देर में रच गया था, वह क्या राजुल के घर संभव था ? □

४. राजुल

निन्नी एक दिन आएगी, यह तो तय हो था। उसकी प्रतीक्षा मेरे मन में जाने कब से बसी हुई थी। शुरू में भैया ने जब मेरा साड़ी पहनना छुड़वाया और एक तरह से डांट-डपटकर ही स्लैक्स-स्कर्ट पहनवाने लगे, तब भी उसी का ख्याल आया था कि वह देखकर क्या कहेगी, किस तरह हँसेगी। सोच-सोचकर ही शर्मिंदा होती रहती थी। बाद में, जब अनेक मुखों से अपनी प्रशंसा सुनी तो चाहने लगी कि निन्नी आए और मुझे देखे'''खूब अच्छी तरह देखे। जान ले कि मैं उससे हीन नहीं, बल्कि उससे कहीं ऊपर हो गई हूं। घर पर आने वाली ऐंग्लो-इंडियन टीचर जब मुझे और मंजुल को इंगलिश में बातें करना सिखलाती, तब भी मैं निन्नी को याद करने लगती थी। उसके नये ढंग के ड्रेस, फैशन में कटे बाल और कॉन्वेंटी लहजे की हिंदी का रोब ही तो हमारे घर वाले खाते थे—और ऐसी कौन-सी बात थी उसमें ? उस पुरानी जलन ने ही तो मुझे इतना आगे बढ़ा दिया, जितनी कि शायद भैया ने कल्पना भी नहीं की होगी। हां, मैं उससे जलती थी, साथ ही उससे प्रभावित भी थी। उसके साथ रहती थी। उसके पास अपने को सुरक्षित समझती थी। हर बात में उसकी राय पूछती थी।'''लोग इसे दोस्ती या प्रेम जो भी समझते हों, मैं तो मन ही मन उससे ईर्ष्या करती थी। मेरी सुंदरता, मेरे घर का इतना सारा वैभव कुछ भी नहीं और वह दो-चार बोल बोलकर सब पर छा जाए ?

आज नहीं आती तो निन्नी अपने डैडी के रिटायर होने पर तो आती ही। यहां का किराये वाला मकान उन्होंने जाने से पहले खरीद लिया था, जिसमें आजकल मणि दीदी रह रही थीं। मुझे इसी दिन की प्रतीक्षा थी कि वह आए, मुझे देखे और उसी तरह ईर्ष्या से

छटपटाए, जिस तरह मैं छटपटाती रही थी। और होता क्या है? आज जब मेरा वह आया है, मेरा घर, पूरा शहर मेरा ही नाम ले रहा है, वह साधारण कपड़ों में, साधारण तरीके से आकर मुझे ऐसे देखती है, जैसे एक कौतुक देख रही हो···मैं जैसे असली 'मैं' न होकर किसी की उधार ली हुई भूमिका अभिनीत कर रही होऊं!···क्या यह कम अपमान-जनक है? इस पर लोग चाहते हैं कि मैं उससे पहले की ही तरह मिलूं। हमारे घर के ये पुरातनपंथी लोग भला यह सुनहरा अवसर क्यों छोड़ देंगे?—क्यों मिलती मैं? क्या है, जो आज उसे मेरे बराबर खड़ा कर सकता है? कभी आधुनिकता में वह मुझसे आगे थी, आज मैं बहुत-बहुत आगे हूं···देर-सबेर निन्नी को यह स्वीकारना ही पड़ेगा! पर हद तो तब हुई, जब 'माताजी' टाइप लड़कियों की बढ़-चढ़कर आलोचना करने वाले विशाल ने भी उसकी प्रशंसा शुरू कर दी। मंजुल ने सुना तो बोली, 'हाय! सचमुच निन्नी दी आई थीं? कैसी लगती हैं अब दीदी?' बिंदा जी मसोसता हुआ बोला, 'निन्नी बेटी से हमको नहीं भेंट करवाई?' और निन्नी···मुझे देखकर न आश्चर्य, न प्रशंसा। कुढ़कर बुराई ही करने लगती, तब भी मुझे जीत का अहसास होता, पर उसने तो स्वाभाविक रूप से मुझे स्वीकार कर लिया—न सकुचाई, न दुराव दिखाया। अपने उसी पुराने उच्च आसन पर से मुझे मुस्कराहट के साथ देखती रही···विशाल के सामने आकर भी नहीं चौंकी। प्रेम, रोमांस, कोर्टशिप···यह भी उसे अपने उस उच्चासन से हटा नहीं पाया।

मैंने भी सोच लिया कि जैसे हो, निन्नी को हराना ही है। वह जब यहां तक आ ही गई है तो इस चुभन को हमेशा के लिए निकाल ही फेंकना है!

मैंने काले पर आसमानी इम्पोर्टेड शलवार-सूट निकाला, जिसे देखकर विशाल कहता है, 'बदली में से चांद निकल रहा है।'—दो चोटियों में आसमानी फुंदने वाला रिबन लगाया, सेंट स्प्रे किया, फिर भाभी को सुनाती हुई बोली, 'जरा निन्नी से मिलकर आती हूं···।'

'हां-हां, उसे कल बुला लेना···।' भाभी मेरे जाने की बात सुनकर

खुश हो उठी थीं। मुझे उनकी प्रसन्नता पर भी गुस्सा आ रहा था… भला मेरे जाने से इन्हें क्या मिल जाएगा ? यही न कि निन्नी आएगी और ये उससे पुरानी बातों का रोना रोएंगी ! मेरे और भैया के विरुद्ध जहर उगलेंगी ! मुझे नीचा दिखाने का उन्हें एक और मुद्दा मिल जाएगा कि निन्नी भले घर की भली लड़की की तरह रहती है और बी० ए० पास करने वाली है, जबकि मैं आई० एस० सी० में फेल हो गई हूं !

गई तो निन्नी बबलू-बंटी के साथ बैठी कैरम खेल रही थी। अजीब लड़की है…बूढ़ों में बूढ़ी और बच्चों में बच्ची बनी रहती है। मुझे देखा तो बिना किसी मान-शिकायत के बोली, 'चलो, आज तो मेरी याद आई न !' कहकर उसने दीदी को पुकारा, 'दीदी, जरा देखो तो, कौन आया है तुम्हारे घर…!'

दीदी आकर जिस तरह मुझे देखने लगीं, उससे न चाहते हुए भी मुझे शर्म आ गई। अपने इतना सजधजकर आने पर अफसोस होने लगा।

'तुमसे मिलने आई है…दीदी की याद भला कहां होगी राजुल को !' दीदी ने शिकायत की। मुझसे इसका जवाब देते नहीं बना। निन्नी ने मुझे इस अप्रिय स्थिति से उबारा। बोली, 'देखती हो, कितनी सुंदर लगती है इस ड्रेस में राजुल ! पहले मैं चाची से इसके लिए कितना लड़ती थी कि जरा-सी लड़की को अभी से धोती पहनाकर बुढ़िया बना दिया है। जो हो, रमा भैया हैं ग्रेट आदमी। घर और घर के लोग, सबका कायाकल्प करवा दिया…।'

मेरे मन से एक भार उतर गया। मैंने चहककर पूछा, 'तुम्हें पसंद आया सब ? भाभी और बुआ को तो हर चीज में बुराई नजर आती है…।'

मैं उत्सुकता से उसके उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी। जाने कब मैं फिर से पुरानी राजुल बन गई थी—निन्नी की हर बात में राय पूछने वाली। निन्नी ने कहा, 'हां, इस नये वातावरण में उन्हें तो मुश्किल लगती ही होगी ?'

निन्नी को उसका वाला ही कमरा मिला था, सीढ़ियों के बगल

वाला, जिसकी खिड़कियां पीछे के छोटे बगीचे में खुलती थीं। निन्नी मुझे वहीं ले गई। मैंने बैठकर उसे बतलाना शुरू किया, 'सचमुच, भैया ने बड़े प्लांड-वे में सब किया। घर को ठीक करवाया, हम लोगों को पढ़ाने के लिए एक ऐंग्लो-इंडियन टीचर रखा, डांस सिखवाया, क्लबों का तौर-तरीका बताया। अब तो जो देखता है, वही तारीफ करता है कि इतनी तेजी से, इतने परफेक्ट ढंग से शायद ही कोई ऐसा कर सका हो। लोग कहते हैं कि रमा बाबू सचमुच विलायत से कुछ सीखकर आए हैं !···आज शहर के टॉपमोस्ट लोगों में उनकी गिनती होती है···।'

मैं भैयामय तो पहले से थी, अब रास्ता मिला तो सरपट भागती चली गई। पता नहीं कब तक मैंने क्या-क्या कहा। कहकर निन्नी की तरफ देखा तो पाया कि बस, उस दिन जैसी ही एक कौतुक-भरी मुस्कान उसके ओठों के कोर पर ठहरी हुई है। मेरा वह अपरिमित गर्व लौट-कर मुझे ही चोट पहुंचाने लगा—सच, भैया के हाथ की कठपुतली बनने का इतना गर्व मुझे क्यों है ? मैंने प्रसंग बदलकर उसके कॉलेज, पढ़ाई आदि के बारे में पूछना शुरू कर किया। निन्नी ने विशाल से किस तरह परिचय हुआ, यह पूछा। मैंने बतलाया तो बोली, 'अच्छा, तो रमा भैया ने तुम दोनों को इकट्ठा कर दिया और तुम लोग प्रेम करने लगे !'

मैं अवाक् रह गई···सचमुच, इस तरह तो प्रेम नहीं होता···! कुछ उलझन के-से भाव से बोली, 'मिलने-जुलने का कोई सिलसिला तो होना चाहिए था न ! विशाल सचमुच मुझे बहुत चाहता है। कहता है कि मुझे देखे बिना एक दिन भी नहीं रह सकता···उसने मुझे एक घड़ी प्रेज़ेंट की है···।'

मैं निन्नी की जगह जैसे अपने को ही विश्वास दिला रही थी।

'और तुम ? तुम कितना चाहती हो उन्हें···?'

निन्नी पूछ रही थी। हां, मैं कितना चाहती थी विशाल को ? मैंने तो कभी इस पर सोचा भी नहीं था। बोली, 'मैं···हां, मैं भी··· बहुत चाहती हूं उसे। तुमने तो देखा ही···वह इतना हैंडसम, इतना

वेलमैनर्ड है···।'

कहते हुए भी मैं अनायास सोचने लगी थी कि प्रेम यही कुछ होता है या क्या। क्या विशाल के प्रति मेरी भावनाएं बहुत गहरी थीं ? वह मेरे लिए जो कहता था, उसे सचमुच महसूस भी करता है ? निन्नी की आंखों में एक पल के लिए व्यंग्य का भाव कौंधा, फिर उसने कहा, 'चलो, अच्छा है। तो, शादी कब हो रही है ? विशालजी के फाइनल इम्तहान के बाद ?'

इस बारे में अभी कुछ निश्चित कहा हुआ था। बोली, 'देखें···यह तो कोर्टशिप चल रही है···।'

'तब तो इसे कोर्टशिप ही रखना, ज्यादा प्रेम मत करने लगना कहीं।'

निन्नी साधारण लहजे में ही कह रही थी, पर मैं चौंक रही थी। ऐसा कैसे हो सकता है भला ! मन की भावनाओं को इस तरह नियंत्रित कर पाना क्या संभव होता है ? अगर सचमुच किसी कारण यह शादी न हुई तो ? कल का अपना व्यवहार और विशाल के मुख पर विस्मय और खिन्नता की रेखाएं भी मुझे याद आईं···मुझे उस तरह का व्यवहार नहीं करना चाहिए था। क्या सोचता होगा वह ?

दीदी मेरे लिए और निन्नी के लिए शर्बत, दालमोठ और खरबूजे रख गईं।

'तुम अपनी भी तो सुनाओ···तुम्हारा भी तो कोई ब्वॉय-फ्रेंड होगा···कौन है, कैसा है ?'

निन्नी हंसने लगी, 'अरे, हम लोग ?··· प्रेम-व्रेम की इल्लत कौन पाले !···जहां ब्याह होगा, चुपचाप चले जाएंगे···।'

'वाह ! अब बूढ़ियों जैसी बातें करने लगी···पहले तो तुम बड़ी मॉडर्न बनती थीं निन्नी ! रहती भी अच्छे ढंग से थीं···।'

मैं जानबूझकर उस पर चोट कर रही थी, अपनी श्रेष्ठता की ओर उसका ध्यान आकर्षित कर रही थी, पर निन्नी पर कोई असर नहीं था। वह मुस्कराती हुई बोली, 'हां भई, क्या पता, कैसे घर में शादी-ब्याह की बात हो···वह लोग मॉडर्न बहू पसंद करें या नहीं, इसलिए

बीच का रहना ठीक है···।'

मुझे खुशी हुई कि मेरे साथ असमंजस की यह स्थिति नहीं थी। मैं एक बार फिर शुरू हो गई। विशाल के डॉक्टर पिता और उसके घर के आजाद-ख्याल लोगों की विशाल से सुनी बातें जोश-खरोश के साथ सुनाने लगी।

निन्नी हंसकर बोली, 'तुम फिर भूल गईं कि अभी कोर्टशिप ही चल रही है तुम्हारी···इसमें संबंध बन भी सकते हैं, नहीं भी···अभी से ससुराल की तारीफ कर रही हो !'

चलते-चलते मैंने एक बार फिर चोट देनी चाही। ड्राइंगरूम की सज्जा पर ऊब-भरी दृष्टि डालकर बोली, 'पहले तो तुम लोगों का घर काफी सजा-धजा रहता था···!'

निन्नी तुरंत बोली, 'भई, वो एक सब-जज का घर था। यह एक लेक्चरर का है। मेरे जीजाजी को तो तुम जानती ही हो, सादा जीवन उच्च विचार वाले जीव हैं···।'

वापस आते समय पहले से कहीं ज्यादा असंतोष अपने अंदर पा रही थी। किसी भी तरह निन्नी को विचलित नहीं कर पाई मैं···उसे अपने सही होने का हरदम इतना विश्वास कैसे रहता है ? किसी तरीके से उसे एक बार भी झुका पाती !···



शाम को कल्पना और मीनाक्षी आईं। मीनाक्षी की बड़ी बहनों ने किसी चैरिटी शो की टिकटें बेचने का काम अपने ऊपर लिया था। मीनाक्षी मुझे भी टिकट देने आई थी।

विशालजी के साथ आना···दो टिकट ले लो···वे जिद कर रही थीं। उनसे बातें करते हुए मैं अनायास ही तटस्थ ढंग से उनकी रूप-सज्जा का विश्लेषण करने लगी। कल्पना इतनी गर्मी में भी चटख लाल रंग की मैक्सी पहने थी और इधर-उधर कटे-छंटे बालों के बीच लाल चौड़े स्कार्फ को बांधे थी। ओठों पर उतनी ही सुर्ख लिपस्टिक।

मीनाक्षी बड़े-बड़े फूलों वाले शलवार-कुर्ते में चमगादड़ की आकृति का नीला चश्मा लगाए, बड़ा-सा वैनिटी बैग लटकाए, ओठों को निश्चित कोण पर तोड़-मरोड़कर मुस्कराती बैठी थी। यही था अब मेरा समाज। निन्नी जैसी लड़कियां मुझसे मीलों दूर थीं। मगर क्या निन्नी आज भी मेरे लिए महत्त्वहीन हो पाई है? उसमें जो हार्दिकता और स्नेह की ऊष्मा है, वह इन लोगों के व्यवहार में कभी आ सकती है? मुझे अम्मा के समय का सब कुछ अचानक याद आने लगा…तब कहीं कोई तनाव या उलझन तो नहीं थी। दिखावे के नीचे असलियत बिलकुल दब तो नहीं गई थी। आज कितना कुछ था, जो उलझन में डालता था। घबराहट और बेचैनी भर जाता था। बाबूजी का घर से एकदम ही कट जाना…बुआ को विद्रूप-भरी तीखी हंसी…भाभी की अक्सर निस्तब्ध रात्रि में फूटती सुबकियां…क्लब के नाम पर भैया के अधेड़ उम्र दोस्तों का इस तरह मुझे घूरना, जैसे आंखों से ही लील जाएंगे…। मुझे खुद पता नहीं कि मैं किस दौर से गुजर रही हूं…

'इसका मन कहीं और है…।' कल्पना ने मेरी अन्यमनस्कता पर फब्ती कसी, 'डॉक्टर साहब का इंतजार हो रहा होगा, क्यों न? अच्छा, फिर हम चलते हैं।'

मैंने उनसे रुकने का विशेष आग्रह नहीं किया। जाने क्यों इस वक्त बार-बार अम्मा याद आ रही थीं और लग रहा था कि घर जैसी चीज मुझसे पूरी तरह छिन गई है। अब तो जो है, वह होटल जैसा एक प्रबंध है और उसमें एक-दूसरे से बे-लिहाज आते-जाते कुछ लोग… बस! मन बेहद उदास हो उठा था। तभी विशाल का फोन आया, 'हलो स्वीटी…गुस्सा उतरा कि नहीं तुम्हारा? एनी होप फॉर मी टुडे?'

उसकी आवाज ने आज मुझे स्पर्श नहीं किया—दूर-दूर मंडराती-सी लगी। व्यवहार की जिस गर्माहट की तलाश मन में उग आई थी, उससे बहुत अलग, औपचारिक, बेगानी।…क्या विशाल के साथ बिताए हुए कुछ घंटे भी अब एकरस नहीं हुए जा रहे हैं? देखना, दिखाना, रिझाना, खिझाना और दूसरों को जलाना क्या जरूरत से

उनमें यह वातावरण कहां बन पाता है ? बाबूजी के हाथ से संदेश का टुकड़ा लेते हुए मेरी आंखें अनायास भीग आई हैं, जिन्हें छिपाने के लिए मैं इधर-उधर देखने लगती हूं, पर उनकी तेज दृष्टि से बच नहीं पाती। उन्होंने पूछ लिया है, 'क्यों, रमा ने डांटा-वांटा है क्या तुम्हें ? रो रही है···ऐं ?'

मेरे आंसू सचमुच आंखों से टपक गए। मैंने संभलकर कहा, 'नहीं बाबूजी, ऐसे ही···आज अम्मा की बड़ी याद आ रही है।'

मुस्कराते हुए वे सारे चेहरे एक साथ ही धूमिल हो गए। बिंदा ने धोती का छोर आंखों से लगाया और सुबकने लगा। बाबूजी गहरे स्वर में बोले, 'भाग्यवान थी बेटा, चली गई···रोकर उसकी आत्मा को मत दुखाओ। बिंदा ! तू भी पगले, बेटी को क्या चुप कराएगा, खुद ही रोना-धोना शुरू कर दिया !'

बाबूजी थोड़ा रुककर मुझसे बोले, 'भाभी भी तो मां-समान ही होती है, और तुम्हारी तो बुआ भी साथ हैं···मैं हूं···।'

मैंने अपने आंसू पोंछ लिए···यहां जितने लोग हैं, सबका दुःख मेरे अपने दुःख से कहीं गहरा है···उसे कुरेदने का मुझे आखिर अधिकार ही क्या है ?

कुछ देर चुप्पी छाई रही। फिर मैंने ही प्रसंग बदला, 'कल छोटे भैया की चिट्ठी आई थी, आपने पढ़ी बाबूजी ?'

वह कुछ खिन्न-सी हंसी हंसे—'हां, पढ़ी। पढ़ाई खत्म हो चुकी, मगर दो-तीन महीने इधर-उधर घूम-फिरकर आएंगे बर्खुरदार।···घूमो भाई ! पंछी के पर निकल आते हैं, तब कौन रोक सकता है ? परवाह किसे है ? मां चली ही गई···बाप भी कितने दिन धरे रहेंगे ?'

मुझे धक्का-सा लगा। मैंने इस तरह सोचा ही नहीं था कि बाबूजी भी कहीं जल्द ही हम सबको छोड़ जा सकते हैं। मेरा पहले से उदास मन और भी घबराहट से भरने लगा। तभी बुआ ने कहा, 'आने को लिख दो न भैया···घूमने के लिए तो अभी उसकी सारी उम्र पड़ी है। वह रमा जैसा नहीं है कि तुम्हारी बात टाल देगा।'

'कौन जाने···रमा भी पहले ऐसा कहां था ! छोटा विलायती बाबू

नहीं बनेगा ?'

'नहीं···छोटे भैया का दूसरा ही मिजाज है।' विदा ने कहा। बुआ फिर जोर देकर बोली, 'हां भैया, वह आ जाए···उसकी और राजी की शादी अपने सामने कर दीजिए···।'

बाबूजी ने बारी-बारी से सबको देखा, फिर बोले, 'अच्छा, लिख दूंगा···लेकिन तुम सब इतने डरे-घबराये क्यों लग रहे हो ? मेरी वजह से ? अरे, अभी कुछ नहीं हो रहा है मुझे···चलो, अब मुझे लिटा दो।'

विदा ने कंधे से सहारा देकर उन्हें लिटाया, एक हल्की-सी चादर ओढ़ाई और फिर उनके पायताने जमीन पर बैठ गया। बाबूजी मुझसे पढ़ाई और इम्तहान के बारे में पूछने लगे। अगले महीने सप्लीमेंटरी होने वाला था।

'लेकिन तू फेल कैसे हो गई ? इतनी कमजोर तो नहीं थी पढ़ने में···?'

बाबूजी ने अचानक पूछा तो मैं सकपका गई। क्या मैं उन्हें बतला सकती थी कि मैं तो विशाल के संग आकाश में उड़ रही थी पूरे समय, पढ़ाई कर ही नहीं पाई। मैंने कहा, 'कोई अच्छा ट्यूटर इस बार भी नहीं मिल रहा है, पता नहीं कैसा होगा···?'

'साइंस ?···तो उदय से क्यों नहीं पढ़ती ? उससे अच्छा कोई पढ़ाएगा ?···बहुत दिनों से उदय दिखाई नहीं दिया निर्मला ?'

अंतिम वाक्य उन्होंने बुआ से कहा।

उदय अंकल, बुआ के सबसे छोटे देवर, छोटे भैया के हमउम्र और मित्र। शायद छोटे भैया के साथ ही बाबूजी को उनकी भी याद आ गई थी। एक बार जाने किस बात पर बड़े भैया ने उन्हें डांटकर घर से भगा दिया था। नौकरों से कहा था—फिर अगर इसे किसी ने अंदर आने दिया तो मारकर चमड़ी उधेड़ दूंगा सालो···!

मैंने देखा, बुआ उदय अंकल का जिक्र आते ही स्याह-सी पड़ गईं, पर तुरंत ही मुस्कराकर बोली, 'उदय आया तो था, आप तब सो रहे थे, इसी से जगाया नहीं ···।'

मेरे साथ भाभी भी चौंककर देखने लगीं। बाबूजी के लिए कैसा साफ झूठ बोल गई थीं वह !



नहीं, यह सिर्फ संयोग था···निन्नी के आने न आने से इसका कोई संबंध नहीं था···था भी तो बस इतना कि उसने मुझे किन्हीं क्षणों में अपने अंदर झांकने को मजबूर कर दिया था। अब मेरे आसपास की चीजों पर और तरह की रोशनी पड़ने लगी थी।

चैरिटी शो के टिकटों के बारे में बात करने भैया के ऑफिस वाले कमरे की तरफ जा रही थी। अचानक भैया को किसी से बात करता जान बाहर ही रुक गई। भैया बुआ से कह रहे थे, 'जानती हो बुआ, आज सुबह एक केस मेरे पास आया था। विधवा निस्संतान चाची को मारकर भतीजे ने हजारों के जेवर उड़ा लिए···। तब से तुम्हारी ही चिंता लगी है। न हो, किसी दिन उदय आए और तुम्हें···हां, जमाने का कोई भरोसा है ?'

बुआ अजीब ढंग से हंसीं—'विश्वास तो जमाने पर से मेरा बहुत पहले ही से उठ गया है, जब से बार-बार मेरी ससुराल तक दौड़कर तुमने जेठजी से बंटवारा करवाया और मेरा और उदय का हिस्सा हड़पकर बैठ गए। एक यह काम रह गया है, वह भी कर डालो, उदय बेचारे का नाम लेने की क्या जरूरत है ? वह तो खुद ही मेरा लिहाज करके चुप है, ट्यूशन करके, आधा पेट खाकर के अपनी पढ़ाई कर रहा है और तुम लोगों से झूठ-मूठ कहते फिरते हो कि उसे तुम महीने में पांच सौ रुपये भेजते हो और वह बुरी लत में फूंक देता है। उसे मुझसे मिलने नहीं आने देते हो···।'

भैया झल्ला उठे, 'ओफ्फोह ! मैं तो कह रहा था कि न हो, अपने जेवर बैंक के लॉकर में रख दो, जहां अम्मा और सरोज के हैं···घर में खतरा रखने से क्या फायदा ?'

'समझी, समझी···!' बुआ ने मजाक उड़ाने वाले स्वर में हंसकर

कहा, 'जैसे कोठी, जमीन, बगीचा सब साफ हो गया···वैसे ही ! अच्छा, इतनी फिकर करके दुबले मत होओ, मैंने पहले ही अलग लॉकर लेकर जेवर रख दिए हैं···उदय का नाम भी साथ है। वह जब चाहे, मेरी हत्या किए बिना सब निकाल सकता है···।'

भैया बेहद खिसियाने हो उठे थे। उन्होंने चीखकर कहा, 'अच्छा जाओ, दिमाग मत चाटो मेरा !···अरे, तुम्हारा धन तुम्हारे किस काम आता, दामाद या जेठ-देवर ही लेते न, हमने ले लिया तो क्या फर्क पड़ा ?'

मैं बुत-सी खड़ी रह गई। जिसके लिए मेरे मन में इतनी इज्जत, इतना समर्पण का भाव था, उसका असली चेहरा यह था ! सारी तरक्की बुआ का लेन-जायदाद बेचकर की गई और नाम हुआ भैया की काबलियत का !

सुबह बुआ पूजा करके उठी थीं, तभी मैं उनके पास पहुंच गई। बुआ ने मुड़कर देखा तो हंसी, 'क्यों रे राजी···पास होने की प्रार्थना करने आई है क्या मेरे भगवान् से ?'

'नहीं बुआ, आज तो यह पूछने आई हूं कि कल शाम आप भैया से जो कह रही थीं, वह सच ही था न ? मुझे रात-भर नींद नहीं आई। ···भैया कैसे ऐसा कर सके बुआ···?'

कहते-कहते मेरी आंखें छलक पड़ीं तो बुआ मुझे कंधे से लगाकर बोलीं, 'तो तू क्यों रोती है पगली ? जिसने जैसा किया, वैसा पाएगा ही—आज नहीं तो कल ! देख, भैया या दुलहिन को इसकी भनक न लगे, समझी न बेटा ··वो सह नहीं सकेंगे···कल के मरते आज मर जाएंगे···है न ? मुझे अपनी नहीं, उदय की ही चिन्ता है, सो ईश्वर की कृपा से पढ़ने में तेज है···नौकरी-चाकरी मिलने में दिक्कत नहीं होगी। बस, ये आखिरी साल पास कर ले···।'

बुआ ने भैया को क्षमा कर दिया था, पर मुझे हफ्तों उनकी तरफ देखने में भी अनिच्छा का बोध होता रहा। □

५. नंदिता

विशाल अब लगभग हर रविवार को आने लगा है। कभी-कभी बीच में भी। शुरू में वही एक बहाना था—उससे सीनियर लड़के का, जिसकी बाबत एक बार जीजाजी ने पूछ लिया था। हर बार वह कोई नई बात पता लगाकर आता—लड़के के एक चाचा फलां कॉलेज में प्रोफेसर हैं, उन पर जोर डलवा सकें तो काम आसानी से हो सकता है···उनकी बड़ी पूछ है लड़के के घर में···

मणि दी उसकी बार-बार तारीफ करतीं—'बड़ा सिंसियर लड़का है। एक बार कहा तो इतनी दौड़-धूप कर रहा है···और घमंड तो नाम को भी नहीं है ! आकर चटाई पर बैठ जाएगा, बच्चों का सवाल लगाने लगेगा। लगता ही नहीं कि परिवार से बाहर का आदमी है।'

'हां, मिलनसार है···।' जीजाजी समर्थन करते।

बबलू-बंटी आते ही उसकी जेब में हाथ डाल देते—'अंकल, हमारी टॉफी ?'

'लाए हैं भाई···!'

टॉफी खाते हुए बंटी पूछता, 'चलें आंगन में ? हो जाए क्रिकेट···?'

वह धीरे से मेरी तरफ देखता, कहता, 'नहीं यार ! आंगन अभी गर्म होगा। लाओ, लूडो निकालो···पार्टनर वाला होगा···दीदी, आप भी खेलिए न ?'

दीदी अधिकतर इन्कार कर देती थीं—'नहीं, आप लोग खेलिए, मेरी तो दिन में जरा झपकी लेने की आदत पड़ गई है···।' वह जम्हाई में फैलते मुंह के आगे हथेली लगाकर उठ जातीं। मुझे बैठना ही पड़ता। कभी लूडो, कभी ताश, कभी कैरम। जून की तेज धूप की वजह से खिड़की-दरवाजे बंद होते और हमें लगता कि दुनिया से अलग हम सबसे

छिपकर इकट्ठा बैठे हुए हैं। ऐसे में बच्चे खेल में डूब जाते और विशाल बार-बार मेरी तरफ देखने लगता तो अजीब-सी अनुभूति होती, जैसे सिर्फ वही मेरे साथ रह गया है और उसकी निगाहें कुरेदकर मुझे किसी और भी एकांत कोने में घेर लेना चाहती हैं। मन में बार-बार होता कि सिर्फ मेरे लिए आता है। आईने के सामने खड़ी होकर मैं अकेले में अपने को देखने लगती कि राजुल को चाहने वाले के लिए मुझमें भला क्या आकर्षण हो सकता है। अपनी इस बदली मन.स्थिति पर बेहद कोफ्त होती और इसका कारण विशाल को समझकर उस पर झुंझलाहट होती"'आखिर रोज-रोज यहां आने की जरूरत ही क्या थी उसे ? पर अब तो उसे आने के लिए किसी बहाने की भी जरूरत नहीं थी। वह किसी भी दिन, किसी समय आकर बैठ जाता। जीजाजी के सामने वह विचारशील और उदास युवक बन जाता। अपने परिवार की ढेरों बातें इस तरह सुनाता कि जीजाजी बाद में दीदी से कहते, 'बेचारा फस्ट्रेटेड है। मां प्रोफेसर और बाप डॉक्टर"'सपन्नता तो उसने देखी है, मगर पारिवारिक जीवन क्या होता है, यह नहीं जाना। इसीलिए भाग-भागकर यहां आता है"'।'

मैं अपना संदेह किस पर व्यक्त करती ? जानबूझकर ऐसे समय में आना जब जीजाजी न हों और जीजी रसोई में व्यस्त हों या उनका सोने का वक्त हो, भावुकता से कोई द्वयर्थक वाक्य बोलकर मेरी तरफ टकटकी लगा देना, मेरे कपड़ों की तारीफ करते-करते मेरी तारीफ करने लगना, राजुल की बुराई करना, किसी चीज को लेने के लिए हाथ बढ़ाते वक्त उंगलियों को छू लेना, क्या सब कुछ अकारण था ? अगर नहीं तो वह मुझसे चाहता क्या है ? प्रेम ? लेकिन मेरे मन में उसके लिए प्रेम कहां था ?

मणि दीदी के पत्र के जवाब में उस दिन पापा का पत्र आया था कि ठीक है, निन्नी का ऐडमिशन पटना में ही करवा लो। तब सबसे ज्यादा विशाल ही खुश हुआ था। दीदी से उसने कहा—अब तो बढ़िया पार्टी हो जानी चाहिए। नंदिताजी फर्स्ट डिवीजन प्राप्त हुई तो चार रस-गुल्लों पर छुट्टी हो गई। खैर, तब तो वे दुखी थीं कि आगे उन्हें पढ़ने

नहीं दिया जा रहा था…अब वो कमी पूरी हो जाए…

वह खुद जाकर दो-तीन तरह की मिठाइयां और नमकीन ले आया। मुझसे पकौड़े बनवाए और देर तक हंसी-मजाक के बीच खाना-खिलाना होता रहा। उसकी दृष्टि तब कहती प्रतीत हुई थी कि चलो, अब तो तुम मेरे पास रहोगी, वापस नहीं जाओगी…!

मेरा संदेह गलत नहीं था। एक शाम जब जीजी बबलू के साथ पड़ोस में गई थीं, बंटी अपने दोस्त को कॉमिक की किताबें दिखला रहा था और जीजाजी भीतर नहा रहे थे, विशाल ने अचानक ही भावोच्छ्‌वास के साथ मेरी ओर टकटकी लगाकर कहा, 'इसे ही कहते हैं, नदी-किनारे आकर प्यासे रहना।…आपने कभी अनुभव किया है नंदिताजी कि सामने पानी धरा रखा हो और प्यासे को मना कर दिया जाए पीने से तो उसे कैसा लगता है?'

वह सीधे अब भी कुछ नहीं कह रहा था, पर उसकी स्थिर पलकें, करुण ढंग से मुड़े हुए ओठों के कोने और व्यग्र भंगिमा अर्थ स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त थे। मैंने अजीब-सी बेचैनी अनुभव की, मगर लापरवाही दिखाते हुए हंसकर कहा, 'नहीं, मेरे साथ कभी ऐसा हुआ ही नहीं…पानी की ऐसी दिक्कत भी पेश नहीं आई कि…।'

'आप तो जानकर अनजान बनती हैं।' वह झुंझलाया-सा बोला, 'सच कहिएगा, क्या आपको कभी यह नहीं लगा कि मैं यहां सिर्फ आपके लिए आता हूं? प्रेम ऐसी चीज नहीं है कि इसका अंदाजा दूसरे पक्ष को बिल्कुल न लगे…। मैं सचमुच तुम्हें चाहता हूं नंदिता…! आई लव यू।' कहते-कहते उसने मेरे कंधे पर हाथ रख दिया और आंखों में झांकने लगा।

तो वह क्षण जिसे मैं टालती आई थी, जिसे जानते हुए भी भुला देना चाहा था, आ गया था। मैं आश्चर्य और विवशता का अनुभव करती जड़-सी हो उठी। पता नहीं लोग ऐसे में किस तरीके से अस्वीकृति व्यक्त करते हैं!…क्या कहते हैं कि सामने वाले का अपमान भी न हो और…

विशाल मेरे और करीब आ गया था। उसकी सांसें मुझे छू रही

थी। वह कह रहा था—'हां कहकर तो देखो एक बार। प्रेम की दुनिया कितनी मीठी, कितनी रंगीन होती है, इसे पहचानो तो पहले···। एक बार मेरी तरफ देखो नंदिता···लेट मी लव यू वन्स···!'

मुझे अब भी कुछ नहीं सूझ रहा था। कई धाराओं में मैं अनायास ही बंटने लगी थी···गर्व और तुष्टि का आभास···घबराहट···विशाल के प्रति एक साथ करुणा और क्रोध···राजुल के लिए दया।···विशाल से हाथ छुड़ाकर मैं दीवान के दूसरे कोने पर सिमटकर बैठी तो पसीने-पसीने हो रही थी। विशाल वहीं खड़ा-खड़ा फुसफुसाया, 'मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता नंदिता···आई लव यू!···आई लव यू!!'

मैंने उसके एक तरफ झुके, पिघल आए-से चेहरे की तरफ देखा—क्या यह प्रेम था? या उसके अस्थिर चित्त की चंचलता की एक तरंग···? जो कुछ भी था, वह मेरी कल्पना में बसा 'पुरुष' नहीं था, मैं उसे कभी, कभी उस तरह से, प्रेम नहीं कर सकती थी!

'प्लीज! इस तरह की बातें मत कीजिए···मैं आपकी इज्जत करती हूं···।' मैंने खिन्न स्वर में कहा और उठने लगी।

विशाल बोला, 'मैं जानता हूं···तुम राजुल की वजह से ऐसा कह रही हो। तुम्हारा सेंटीमेंट अपनी जगह सही है, मगर मैं सच कहता हूं कि उस जैसी लड़की के लिए तुम्हारा त्याग कोई मतलब नहीं रखता। ···उसके मन में किसी के लिए कोई भावना नहीं है।···वह···।'

त्याग! तो वह समझ रहा था कि मैं भी उसे उसी तरह चाहती थी, सिर्फ राजुल के कारण इन्कार कर रही थी! कितना ज्यादा विश्वास था उसे अपने रूप-व्यक्तित्व पर···! अपनी घबराहट पर अब मैं काबू पा चुकी थी। उसके चेहरे पर सीधा देखकर बोली, 'नहीं, मैं सिर्फ अपनी बात कह रही हूं···आप अभी राजुल से नाराज हैं, इसलिए समझ नहीं पा रहे हैं।'

मैं क्या समझाना चाहती थी, यह मुझे खुद नहीं पता था। उसने भी चाहे न समझा हो, मेरे स्वर की बेलाग तटस्थता को जरूर महसूस किया होगा। वह परेशानी से मुझे देखता रहा। शायद वह अंत तक मेरी तटस्थता को मेरा त्याग समझता रहेगा, अपनी अपात्रता नहीं।

···मौका मिलते ही वह शायद फिर प्रेम-निवेदन करने लगेगी। प्रेम करना क्या इतना ही आसान होता होगा···?

☐

कल अचानक मंजुल आ गई। आते ही उसने शिकायत के स्वर में कहा, 'क्या निन्नी दी, आप भी नहीं आती हैं? स्कूल बंद है। कितनी वोरियत होती है दिन-भर! और, आपने अपने फर्स्ट डिवीजन पास होने की बात भी छिपा ली कि कहीं मिठाई न खिलानी पड़े···!'

'अरे नहीं···खाओ न मिठाई। राजुल को अपने फेल होने का दुःख होगा, इसीलिए नहीं कहा···।' मैंने कहा, 'अब तो पढ़ रही है न राजुल?'

'हां, पढ़ रही हैं।···विशालजी भी नहीं आ रहे हैं न अब उतना, तो करें क्या?'

'कब से नहीं आए वो?'

'एक हफ्ते से ऊपर ही हो रहा है। उस दिन आए तो वे और दीदी दोनों सीरियस बने वैठे थे। विशालजी कह रहे थे कि फाइनल एग्ज़ाम्स नजदीक हैं, इसलिए अब रोज आना मुमकिन नहीं है। जीजी भी कह रही थीं कि बेकार रिज़ल्ट खराब कर लिया, अब सप्लीमेंटरी के लिए ठीक से पढ़ना है···उस दिन दोनों असली विद्यार्थी बने हुए थे।' कहकर वह हंसने लगी।

'अच्छा, भाभी और बुआ कैसी हैं?' मैंने पूछा। वह मुंह बनाती बोली, 'आई डोन्नो बाबा! उन लोगों का तो अपना अलग ही चक्कर रहता है···घर-गृहस्थी, पूजा-पाठ···ये नहीं करो, वो नहीं करो···पता नहीं सालोंसाल लोग कैसे इस तरह रह लेते हैं!'

'और कहीं तुम्हें भी वैसे रहना हुआ तो?' मैंने उसे छेड़ा।

'अः, छोड़िये फालतू बात! ऐसी मैं रहने वाली हूं न!' वह नखरे से उंगलियां मरोड़ती, नाक सिकोड़ती बोली। नृत्य का अभ्यास करते-करते उसकी तरह-तरह की भाव-भंगिमा बनाने की आदत पड़ गई थी।

'तो, तुम्हारी कोर्टशिप कब शुरू हो रही है ?'

वह इस प्रश्न पर झेंपी नहीं, जैसी कि मुझे अपेक्षा थी। तुरंत बोली, 'मैं तो बाबा, इन सब चक्करों में पड़ूंगी ही नहीं। जिसे करना हो, चट-पट ब्याह करे, नहीं तो जाए अपने घर ! देखिए न, विशालजी के साथ घूमघामकर जीजी फेल भी हो गईं और उधर शादी की बात भी पक्की नहीं हुई। उनके चचा कह रहे थे कि अभी तो वे अमरीका जाएंगे, आगे पढ़ने···अभी शादी कैसे होगी ?'

विशाल ने हमारे यहां इस बात की कोई चर्चा नहीं की थी। क्या वह सचमुच राजुल को टालना चाहता है ?

'अब तो कभी-कभी बड़े भैया भी दीदी को झिड़क देते हैं कि क्या मुंह लटकाये बैठी रहती हो विशाल से कोई तुम्हारी शादी तो नहीं हो चुकी है न ! उसके अलावा और कुछ नहीं है क्या ? यही तो खराबी है तुम लड़कियों में कि किसी से थोड़ी जान-पहचान होते ही उससे सेंटिमेंटल तरीके से अटैच्ड हो जाती हो। तुम्हारी जिंदगी कोई विशाल तक जाकर खत्म तो नहीं हो गई ?—बेचारी दीदी की ऐसे भी आफत है !'

मुझे राजुल के लिए अफसोस तो हुआ ही, अपराध का भी बोध हुआ···इस सारे कांड की जड़ में क्या मैं ही थी ? मैं यहां आई ही क्यों ? और, विशाल भी कितने अस्थिर मन का है ! आज यहां, कल वहां···उसे खुद ही नहीं पता कि वह चाहता क्या है ! शादी के बाद भी वह इस तरह की हरकतें कर सकता है···

मेरी विचारधारा फिर रमा भैया तक जा पहुंची। भूल अगर किसी की थी तो उनकी ही थी। राजुल को विशाल से मिलाने के पहले उन्हें इस संभावना पर भी सोच लेना था। जितनी आसानी से उन्होंने राजुल के मन में विशाल के लिए लगाव उत्पन्न किया था, उतनी आसानी से क्या उसे मिटा भी सकते थे ?

मंजुल बहुत समय के बाद यहां आई थी, उसने घूम-घूमकर पूरा घर देखा। छत पर गई, नये बने रसोईघर को देखा, पढ़ने के लिए कहानियां और पत्रिकाएं लीं। चलते समय बोली, 'मालूम है निम्मी दी,

छोटे भैया आने वाले हैं, चिट्ठी आई है···।' कुछ रुककर उसने कहा, 'बड़ा मजा आएगा, राजी दी और छोटे भैया, दोनों की शादियां होंगी···।'

'मगर राजी की कैसे होगी ? विशाल भी तो अमरीका जा रहे हैं न···?' मैंने पूछा। मंजुल गर्दन झटककर बोली, 'उंह ! वो नहीं करेंगे तो क्या जीजी की शादी ही नहीं होगी ?'

वह चली गई और मैं सोचती रह गई कि इस तरह की बातें घर में शायद चल रही हैं कि राजुल की शादी किसी और जगह जरूर होगी, तभी तो मंजुल इतने विश्वास के साथ ऐसा कह रही थी।

बेचारी राजुल ! मुझे उससे मिल लेना चाहिए···वह क्या सोचती है। क्या करने जा रही है। शायद मैं उसकी कोई सहायता कर सकूं··· पूरे दिन राजुल के लिए मेरा मन घुटता रहा। पर, उसके लिए कुछ करना आसान कहां था !



अगले ही दिन वहां गई। पता लगा कि राजुल ऊपर पढ़ाई में लगी है। कुछ देर भाभी और मंजुल के पास बैठकर ऊपर गई तो देखा, बॉलकनी पर मेज-कुर्सी लगाए राजुल किताबों से पार लॉन पर निगाहें जमाये खोई-सी बैठी थी। आहट सुनकर उसने मुड़कर देखा, बोली, 'आओ···।'

मैं चुपचाप बैठ गई। राजुल के चेहरे पर उदासी की पर्त थी। आखिर वही हुआ था···नई गलियों में मुड़ने से पहले गलियारों के उस जाल का आभास नहीं मिला था, जो अंदर ही अंदर कहीं से कहीं पहुंचा देता है···। रास्ते, दिशाएं, मंजिल सब अपने-आप बदल जाते हैं और पता भी नहीं चलता···। पुराने और नये के मेल से बने ये अंधेरे गलियारे, स्वयं भटककर ही जिनकी लंबाई नापी जा सकती है। दिशा-संकेत के नामपट्ट जिसके बाहर अभी तक नहीं लगे···छपी हुई चेतावनी की पर्चियां जिसकी दीवारों पर नहीं चिपकाई गईं···कदमों के बहुत-

से निशान जिनमें अभी अंकित नहीं हुए···ऐसे ही एक गलियारे में राजुल अभी अकेली खड़ी थी। मैंने पूछा, 'राजुल, आखिर तुम्हारे और विशालजी के बीच में क्या झगड़ा हो गया है? उन्हें मना क्यों नहीं लेती तुम?···यह तुम्हारी जिंदगी का सवाल है। बेकार की जिद करके क्या जीवन-भर का पछतावा मोल लोगी?'

राजुल ने अजीब दृष्टि से मुझे देखा। फिर रूखे स्वर में बोली, 'मैंने ऐसा कुछ नहीं किया है, जिसकी माफी मांगूं और मनाने जाऊं।'

'लेकिन, कुछ तो हुआ होगा?'

राजुल के चेहरे पर तमतमाहट कौंध आई। मुझे तीखी दृष्टि से देखती हुई बोली, 'हां, हुआ क्यों नहीं! हुआ यह है कि तुम मेरे और विशाल के बीच आ गई हो। हमेशा की तरह अपनी मीठी बातों का जाल फैलाकर तुमने उसे मुझसे खींच लिया है···। अच्छा ही हुआ, मुझे पता तो चल गया कि वह कैसा है। तुम भी अपनी जीत पर खुश हो रही हो तो हो लो। दो-चार दिन···वह तुमसे भी बचकर नहीं रहने वाला है···।' कहते-कहते राजुल कड़वी हंसी हंस पड़ी, फिर बोली, 'तुम मुझे यही जताने आई थी न कि तुमने मुझे हरा दिया है? तुम्हें यह जीत मुबारक हो!···मुझे विशाल से कुछ भी लेना-देना नहीं है···।'

'यह सब बेकार की बात है। तुम उसे कभी नहीं भूल सकती··· तुम उसे प्यार करती हो!' मैंने जोर से कहा।

वह भी ऊंचे स्वर में बोली, 'क्यों नहीं भूल सकती? जब वो मुझे भुला सकता है तो···।'

'यह तुम्हारा बचपना है, जिद है। बाद में तुम्हें इसका पछतावा होगा राजुल! इसी से कहती हूं कि उसे मना लो···प्रेम में झुकना पड़ता है, अपना-अपना मान लेकर तनना नहीं।'

'अपना मान, अपना व्यक्तित्व ही नहीं रहा तो फिर मुझमें और देहात की अनपढ़ लड़की में क्या फर्क रह गया?' राजुल ने सगर्व कहा, 'क्या हम लोग इसीलिए वर्षों अपना व्यक्तित्व बनाते-संवारते हैं कि किसी के जरा-से इशारे पर इसे मिटा दें? बिना गलती किए

हो-हल्ले के बीच ही होगा। यह तो पहले सोचना था। जिन्हें ये संकीर्ण बतला रहे हैं, आखिर रहना तो उन्हीं के साथ है।

उस दिन विशाल आया तो मैंने उससे खुलकर बातें करने का निश्चय किया। राजुल बालों पर कंघा फिरा रही थी, तभी मैं ड्राइंग-रूम में आ गई। वह अचकचाकर उठ खड़ा हुआ।

'बैठिए, बैठिए···राजुल आ रही है।'

मैं सामने बैठ गई तो वह परेशान-सा हो उठा। मैंने भी देर किए बिना पूछ लिया, 'आपने आना एकदम से बंद क्यों कर दिया है? राजी से कोई भूल हो गई है?'

वह झिझकता हुआ बोला, 'वो, एग्जाम्स हैं न। आता तो हूं, हां, अब उतना समय नहीं मिलता···।'

'मैंने सुना, आप आगे पढ़ाई के लिए विदेश जाएंगे?'

'हां, देखिए···इरादा तो सबका यही है।'

'और, शादी के बारे में आपने क्या सोचा?'

वह शायद अब तक इस प्रश्न के लिए तैयार हो चुका था। बोला, 'शादी करने के लिए तो उम्र पड़ी हुई है। अभी से क्या सोचूं? अभी तो हम दोनों ही छोटे हैं···।'

मुझे गुस्सा आने लगा। प्रेम के चोंचले चलाने के लिए इनकी उम्र ठीक है और शादी के लिए कम! फिर भी मैंने मुस्कराकर कहा, 'ऐसा क्यों नहीं करते कि शादी करके राजी को भी साथ ले जाएं···उसका खर्च हम लोग देंगे···।'

उसने एक क्षण सोचने की मुद्रा बनाई, फिर बोला, 'हां, हो तो सकता है···खैर! अभी तो फाइनल इम्तहान ही बाकी है।' वह सिर्फ मुझसे पीछा छुड़ाना चाहता था, यह समझना कुछ मुश्किल नहीं था। राजुल भी आ गई। उनके लिए चाय-नाश्ता भिजवाया और मन ही मन मनाती रही कि बात कुछ सुलझ जाए। बहुत कुछ राजुल की व्यवहार-कुशलता पर निर्भर करता था। मगर वह तो एक साथ दो धाराओं में बह रही थी···प्रेम उसे झुकाना चाहेगा, समर्पण करवाना चाहेगा और आधुनिकता का गर्व उसे बराबरी के लिए उकसायेगा···पता नहीं वह

क्या करेगी !

राजी मेरी अपेक्षा से जल्दी ही आ गई। उसका चेहरा उतरा हुआ था। मैंने सामने आकर पूछा, 'क्या बात हुई राजो ?'

'कुछ नहीं भाभी !' कहकर वह ऊपर चली गई। मैं कुछ देर बाद ऊपर आई तो देखा, वह रगउड़ी प्रतिमा की तरह पलग पर बैठी थी। मैंने कंधे पर हाथ रखा, 'आखिर हुआ क्या···बताओ न ?'

'वही, निन्नी। मेरी जनम-जनम की दुश्मन···।' राजुल अचानक फट पड़ी, 'बचपन से लेकर आज तक जिसे देखो, वही मेरे आगे निन्नी का उदाहरण रख रहा है। किसी बात की हद होती है ! मैंने कहा: आज निन्नी को छोड़कर मेरी याद कैसे आ गई ?—तो चिढ गया, कहने लगा : यहां निन्नी की बात बीच में कैसे आ गई !—मैंने भी कह दिया : निन्नी बीच में है तो उसकी बात भी आएगी।—बस, लगे उसकी तारीफ करने . ठीक है, उसके यहां कभी-कभी जाता हूं, उसके घर वालो के साथ मेरी अच्छी पटती है···और उसमें भी कुछ है, जो तुम्हारे में आ जाए तो तुम लाखों नही, करोड़ों में एक हो जाओ···। यहां आया हूं तो अपनी बात करो, उसकी नहीं।—न झेंप, न झिझक, उल्टा हम पर ही झल्लाने लगा।'

'तो लड़ आई हो उससे ?' मैंने निराश होकर कहा।

'नहीं, गुस्सा तो बहुत आया, मगर मैं बोली नहीं कुछ।'

राजुल का स्वर उदास था। इतने पर भी वह विशाल को खोना नहीं चाहती। उसे पूर्ण रूप से पाना चाहती है, यह न विशाल समझ पा रहा है, न राजी के भैया, जो उसकी दूसरी जगह शादी की बात करने लगे हैं।

मैंने उसे समझाया तो फफक कर रोने लगी। मुझे निन्नी पर भी बेहद गुस्सा आ रहा था, मगर बातों-बातों में जब राजुल ने बतलाया कि निन्नी ने उसे खुद आकर सब कहा है, तब मेरा क्रोध मिट गया। निन्नी के मन में छल होता तो वह बतलाने ही क्यों आती ?



इसके दो दिन बाद ही निन्नी की दीदी अपने दोनों बच्चों और निन्नी के साथ आई। बहुत दिनों के बाद इस तरह का सामाजिक संपर्क हो रहा था। अम्माजी के समय में तो रोज ही कोई न कोई मिलने आ जाती थीं, पर धीरे-धीरे सब खत्म होने लगा। आने वालों को संकोच होने लगा। मेरे मायके के लोगों ने भी शिकायत की थी कि आने पर कभी माली बेकार के सवाल पूछने लगता है तो कभी नौकर मुंह बनाते हैं। ऐसे में कौन आना पसंद करता ?

मैंने उन्हें हर तरफ ले जाकर दिखाया। ऊपर की मंजिल तो पूरी की पूरी नई थी। पहले बड़े हॉल में सब लोग सोते थे। अब उनमें ड्राइंगरूम और डाइनिंग हॉल बना दिया गया था। पहले के ड्राइंगरूम में इनका दफ्तर बना था। अब सबके अलग-अलग बेडरूम ऊपर बने थे, साथ में बॉलकनी और छत। वह देख-देखकर तारीफ करती रहीं। बच्चे बगीचे में निकल गए और निन्नी ऊपर चली गई तो मणि बोली, 'राजुल की शादी की तारीख वगैरह पक्की हुई या नहीं ?'

'अभी नहीं, अभी तो विशाल अमेरिका जाने की बात कर रहा है।' मैंने आक्रमण से बचाव करने के ढंग से कहा। मणि बोली, 'हां, यह तो मैंने भी सुना है, लेकिन आप लोग जोर देकर उसके जाने से पहले ही शादी करवा दीजिए। लड़का अच्छा और खुशमिजाज है, मगर चंचलचित्त है। पता नहीं, बाहर जाकर क्या करे !'

'हम लोग भी इसी कोशिश में हैं।···देखें, क्या होता है।'

मणि कुछ देर चुप रही, फिर कहने लगी, 'ऐसा है कि मेरे चाचा ससुर के यहां शादी पड़ी है। चाची के भतीजे से निन्नी की शादी की बात चल रही है। वे लोग भी वहां आएंगे। मैं सोच रही थी कि निन्नी को चार-पांच दिनों के लिए यहीं छोड़ दूं।' कहते हुए उन्हें संकोच हो रहा था। मुझे अचानक पुराने दिनों की याद हो आई, जब दोनों घरों के बीच कोई फासला ही नजर नहीं आता था। मैंने कहा, 'जरूर-जरूर !

इसमें सोचने की क्या बात है ? निन्नी क्या इस घर के लिए नई है ? कब जा रही हैं आप ?'

'परसों···।'

कुछ रुककर उन्होंने पूछा, 'विशालजी तो यहां अक्सर आते होंगे ?'

विशाल की चर्चा से मुझे हर बार शर्मिंदगी का अनुभव हो रहा था, मगर जवाब तो देना ही था। मैंने कहा, 'कभी-कभी आते हैं। इस बार उनका फाइनल इम्तहान है न···।'

'लेकिन, हमारे यहां तो करीब-करीब हर इतवार को आते हैं। कभी-कभी बीच में भी आ जाते हैं। देखिए न, निन्नी के भी ब्याह-शादी की बात चल रही है। कोई इधर का उधर जोड़ने लगे तो उसमें भी दिक्कत होगी। एक दिन तो मैंने निन्नी बेचारी को भी डांट दिया। वह रोने लगी। कहने लगी कि उन्हें आने से मना कर दो। अब हम लोग साफ मना भी कैसे करें ''इस घर का दामाद होने वाला है तो हम भी इज्जत ही देंगे।' वह शिकायत के स्वर में कह रही थीं।

मणि की परेशानी भी अपनी जगह ठीक थी, मगर मेरे लिए क्या हो सकता था ? मैंने कहा, 'नहीं, आप उन्हें साफ मना ही कर दीजिए ···जब दामाद बनेंगे, तब देखी जाएगी।'

चलने से पहले वह बाबूजी से मिलने गईं तो बाबूजी ने देर तक बैठा लिया। सबके समाचार पूछते रहे।

निन्नी ऊपर से आई तो चुप-चुप थी। शायद राजुल की नाराजगी अभी दूर नहीं हुई है। पर निन्नी के चेहरे से ऐसा नहीं लगा कि वह खिन्न है या कोई अप्रिय विवाद हुआ है। मैं अनायास सोचने लगी कि इस लड़की में बड़ा संयम, बड़ी गंभीरता है। विशाल ऐसा कुछ राजुल में भी चाहता है तो गलत क्या करता है ?



शुक्रवार से मौसम कुछ अच्छा हो गया था। मानसून की पहली बौछार ने गर्मी की तपन को कम कर दिया था। शनिवार को इन्होंने

अचानक आकर कहा कि रविवार का पिकनिक का प्रोग्राम बना है। दत्त की फैमिली भी साथ रहेगी। बोटॉनिकल गार्डन चलना है।

ऐसे कार्यक्रमों में मैं कभी उत्साह से भाग नहीं ले पाती थी, फिर दत्त भी मुझे कभी पसंद नहीं आया था। उसकी चुंधी आंखें, तीखी नाक और काइयां हंसी मुझे अनजाने घृणा से भर देती थी। वह था तो इनके हर काम का जोरदार समर्थन कर अंतिम मुहर लगाता था। पत्नी सात-आठ साल पूर्व गुजर चुकी थी। इस बार राजुल में भी उत्साह नहीं था। मैंने विशाल को भी बुला लेने की बात कही तो ये खीझे स्वर में बोले, 'कहलवा तो मैं सकता हूं, लेकिन वह नहीं आया तो मुझे खामखा बुरा लगेगा।'

मैंने फिर जोर नहीं दिया।

ब्रह्मदत्त के साथ उसकी बहन, बहनोई और बहन के दो बच्चे थे। घूमना-फिरना, फोटो खिचवाना, खाना, खेलना, गाना सब चलता रहा। राजुल की उदासी कुछ देर के लिए छंट गई थी और वह निन्नी से भी बातें करने लगी थी, मगर बार-बार राजुल पर लोभी ढंग से ठिठक जाने वाली ब्रह्मदत्त की दृष्टि से मुझे बेहद घृणा होने लगी थी। राजुल और निन्नी भी रह-रहकर तमतमा उठती थीं। एक-दो बार तो ऐसा भी हुआ कि राजुल और निन्नी पूरे गुट से अलग हटकर कुछ देखने लगीं और पीछे से दत्त कैमरा लिए पहुंच गया—'हां, ये साइट बढ़िया है'''स्माइल प्लीज !'

फिर दुपट्टा ठीक करने के बहाने कंधे पर हाथ फिरा देना, ठोढ़ी पर उंगलियां लगा देना। इन पर कोई असर नहीं था। पूरे समय ओठों पर मुस्कराहट लिए प्रशंसात्मक निगाहों से दत्त को देखते बैठे रहे। शायद यह भी आधुनिकता का अंग था।

वापस आने पर सबसे पहले निन्नी ने मेरे पास आकर कहा, 'ये दत्त साहब मुझे अच्छे नहीं लगे। कैसे घूर रहे थे राजुल को ! वो भी सबके सामने। छीः ! जोक्स भी कैसे भद्दे-भद्दे सुना रहे थे ! मुझे तो शर्म आ रही थी !'

अचानक मुझे एक खयाल आया—दत्त का वैसे देखना क्या साभि-

प्राय था ? क्या वह उस दिन का इंतजार कर रहा है, जब विशाल राजुल को छोड़ देगा और वह इतनी बदनाम हो चुकी होगी कि और कहीं उसका ब्याह होना मुश्किल होगा ? इनका क्या है, ये तो ऐसे ही दत्त के प्रशंसक हैं ।

'हां, मुझे भी उससे चिढ़ लगती है…।' कहकर मैंने प्रसंग बदल दिया, 'तो, तुम्हारा एडमिशन कब हो रहा है ? क्या सब्जेक्ट ले रही हो ?'

मंजुल तभी सबली के साथ आ पहुंची—'निन्नी दी, चलिए कैरम खेलने…बड़ी बोरियत हो रही है।'

'लो, अभी घूमघामकर आई और इसे बोरियत भी होने लगी !'

निन्नी हंसी । मंजुल ने मुंह बनाकर कहा, 'वहां भी क्या हो रहा था ! बस, भैया और दत्त भाई साब एन्जॉय कर रहे थे । ऐसे बोर लोगों के साथ पिकनिक मनाई जाती है ?—बस, ऐसे पोज देकर फोटो खिंचवाओ और वो गाना सुनाओ…। उन्हें ये बताओ कि स्कूल में क्या पढ़ाया जा रहा है और उनकी बहन को ये कि डांस में क्या सिखा रहे हैं आजकल ।…याद है भाभी, पिछली बार ये लोग खाने पर आए थे, तब भी यही पूछ रहे थे । दूसरी बात इन्हें आती ही नहीं ।'

निन्नी के साथ मैं भी हंस दी तो मंजुल ने कहा, 'भाभी, आज आपको भी खेलना होगा ।'

'अरे हटो !' मैंने कहा, पर वह जिद करने लगी, 'हट् क्यों, पहले बोलिए, खेलेंगी न…मैं लगा रही हूं ।'

मुझे याद आया, ऐसे ही कभी छोटे बबुआजी जिद कर बैठते थे और मुझे ताश या कैरम खेलना पड़ जाता था । अम्माजी भी हंसकर मुझे भेज देती थीं, 'जाओ दुलहिन, नहीं तो ये मचलो जात सं जाएगा ।'

अतीत के कितने चित्र फिर आंखों के आगे आने लगे ।

□

कटती जा रही थी, उतनी ही अधिक अब बाबूजी के कमरे में बैठने लगी थी, पर अच्छा लगने की जगह मुझे उसके लिए दुःख ही होता था। निराशा के गहन अंधेरे में रोशनी की तलाश जैसी यह उसकी कोशिश थी।

पिछले दिन वह कमरे में आई तो मैं बाबूजी के लिए संतरे का रस निकाल रही थी। राजुल आकर बोली, 'लाइए भाभी, मैं निकाल देती हूं।'

'बस, अब तो हो ही गया।' मैंने कहा, 'लो, तुम्हीं ले जाओ।'

मैं उनके कपड़े तह करके रखने लगी। तभी सुना, बाबूजी राजुल से पूछ रहे थे, 'घड़ी तो सुंदर है तुम्हारी, रमा ने खरीदी है?'

'जी नहीं, यह मुझे विशाल ने प्रेज़ेंट की थी, मेरी बर्थ-डे पर।' कहते-कहते राजुल को अपनी भूल का अहसास हो गया। वह अचानक चुप हो गई। मैं भी सन्नाटे में आ गई---यह क्या कह दिया राजुल ने! हम लोग कितनी कोशिश करके इस तरह की खबरें बाबूजी से छिपाते हैं। बाबूजी गुस्साये स्वर में बोले, 'विशाल? विशाल कौन है? इधर अक्सर उसका नाम सुनाई देता है। तुम्हें घड़ी उसने किसलिए दी? और तुमने ली क्यों?'

राजुल के साथ-साथ मैं भी फक्क हो उठी, मगर तभी बुआजी आ गईं। हमारे उतरे चेहरे देखकर पूछने लगीं, 'क्या हो गया भैया, क्यों गुस्सा कर रहे हैं?'

'मैं पूछता हूं, ये विशाल कौन है? राजी को उसने घड़ी क्यों दी?'

एक क्षण को बुआजी सकपका गईं, फिर हंसकर बोलीं, 'अब आज-कल जन्मदिन मनाने का रिवाज चल गया है न, उसी में लोग कुछ तोहफा ले आते हैं···रमा धूमधाम से मनाता भी तो है न?'

'मगर, विशाल है कौन?' बाबूजी अपनी बात पर अड़े थे।

बुआ बोलीं, 'रमा के एक परिचित वकील हैं, उन्हीं का भतीजा है। बाप मुजफ्फरपुर में डॉक्टर हैं। वह भी डॉक्टरी पढ़ रहा है। रमा को पसंद है···।'

बाबूजी इससे बहल नहीं सके। गुस्से में उबलते हुए बोले, 'पसंद

होने का मतलब यह तो नहीं है कि इस तरह की बेहयाई पर उतर आया जाए! मैं अभी बीमार ही हूं, मरा तो नहीं हूं! दुलहिन, रमा आए तो मेरे पास भेज देना उसे…।'

राजुल ने सुबकना शुरू कर दिया था। बाबूजी ने उसे भी डांटा, 'अभी क्या रो रही हो!…जब पूरी दुनिया तुम पर हंसेगी, तब रोना! जिंदगी-भर रोती रहना!'

बुआ ने शांत करने की कोशिश की। बोली, 'नहीं भैया, क्यों श्रापते हैं! अपनी संतान को मां-बाप आशीर्वाद देते हैं कि…यह मनाइए कि शादी हो जाए, खुशी-खुशी अपने घर जाए। रोयें इसके दुश्मन! यह क्यों रोयेगी?'

पता नहीं बाबूजी कब शांत हुए। मैं राजुल को खींचकर अपने साथ ले आई थी।□

७. विशाल

होस्टल में सुबह की वही भागदौड़ मची हुई है—बाथरूम, शेविंग, नाश्ता, कपड़ों और किताब-कॉपियों की सरसराहटें—जाने कब से तटस्थ दर्शक की तरह इन सारी बातों पर निगाहें दौड़ाने लगा हूं। सुस्त रफ्तार से शेविंग करते हुए आईने में झांकता हूं। पहले वाला वह संतुष्ट, खिला चेहरा नहीं दिखाई देता। कुछ हो गया है मुझे, पता नहीं क्या! एक उलझन, झुंझलाहट, असंतोष की सिकनों से भरा मुखड़ा मेरी तरफ शिकायत-भरी दृष्टि से देख रहा है। तभी तो सब कहने लगे हैं, 'लुक ऐट हिम! द डॉक्टर इज इल—जरूर कुछ माजरा है! अपना यार आजकल ससुराल भी कम जा रहा है।' जिंदगी का कोई सीधा-सपाट रास्ता तो होता नहीं। राजमार्ग पर चलते-चलते किसी

पगडंडी का मोह खींच लेता है और फिर पगडंडी-दर-पगडंडी एक जाल में उलझता एकदम अनजाने मुकाम पर आ जाता है आदमी। इसे खुद समझना ही आसान नहीं है तो किसी को समझाया कैसे जा सकता है?

कुछ दिन पहले एक चीज बड़ी साफ महसूस हुई थी, 'ब्यूटी इज़ स्किन डीप!' सोचते-सोचते लगा कि राजुल के लिए मेरा आकर्षण सिर्फ रूप का आकर्षण है। भावनाओं की कोई गहराई इसमें शामिल नहीं है। नंदिता में जिस सहानुभूति, समझदारी और पूर्णता का अनुभव किया था, वह मुझे हर समय घेरे रहने लगा था। मगर वह लड़की समझ में आने काबिल नहीं है। कोई और होती तो राजुल जैसी खूबसूरत लड़की को छोड़कर अपनी ओर आने वाले का खुशी से स्वागत करती। क्या यह छोटी बात है? पर नहीं, उसे तो अपनी जिंदगी से ज्यादा आदर्शों की पड़ी है। पता नहीं यह आदर्श भी है या नहीं। शायद वह मुझे कहीं न कहीं अपने से हीन समझती है। क्या यह संभव है कि वह मेरी ओर तनिक भी आकर्षित न हो? उसके साफ इन्कार करने पर भी मुझे विश्वास नहीं होता।



कल तीसरे पहर एक बार फिर उसके घर चला गया। उसकी क्लासें अभी शुरू नहीं हुई हैं। गया तो ठीक वैसा ही मिला, जैसा सोच-कर गया था। उसकी दीदी और नौकर दोनों आराम करने के मूड में थे। नंदिता कोई किताब पढ़ रही थी।

'वेदर बहुत बढ़िया हो रहा है न!' मैंने बात शुरू करते हुए कहा, 'सुबह से पढ़ ही रहा था। सोचा, बाहर निकलकर थोड़ा माइंड फ्रेश कर लूं—क्या पढ़ रही हैं आप?'

'ऐसे ही···नॉवेल है।'

वह कुछ झिझक के साथ, संभलकर बोल रही थी। बैठी भी बड़े सतर्क ढंग से थी, जैसे कि मौका मिलते ही मैं उसके सिर पर आ रहूंगा। मुझे पिछली सारी बातें एकदम से याद हो आईं। मैंने कहा, 'उस दिन

तो तुम बिल्कुल नाराज ही हो गई थीं। मैंने बहुत सोचा, मगर समझ नहीं पा रहा हूं। बताओ न, मुझमें क्या कमी है?'

वह बेचैन हो उठी। बोली, 'ऐसा कहकर आप झूठ-मूठ अपने को छोटा क्यों बनाते हैं? आप जैसे भी हैं, हम सभी आपका आदर करते हैं।'

'मुझे आदर-वादर नहीं चाहिए—आई वांट योर लव।' मैंने कुछ उत्तेजित स्वर में कहा। उसने असमंजस की दृष्टि से मुझे देखा, पर बोली कुछ नहीं, चुप ही रही। मैंने ही फिर कहा, 'मेरा ख्याल है कि तुम राजुल की खातिर ऐसा कर रही हो।'

वह खूब संभलकर बोली, 'हां, हर चीज नैतिकता भी तो होती है। आपसे राजुल का परिचय नया है, आप उसे आसानी से छोड़ सकते हैं, हम ऐसा नहीं कर सकते। फिर सोचने की कोई वजह होनी चाहिए। आई डोंट लव यू।'

वह अब सीधे मेरी आंखों में देख रही थी, बेहिचक और दृढ़। तेज गुस्से को पीते हुए मैंने मुस्कराने की कोशिश की और कहा, 'हम लोग शादी करके साथ-साथ अमेरिका चल सकते हैं। वहां तुम्हें राजुल का या यहां के समाज और यहां की नैतिकता का ख्याल भी नहीं आएगा। यहां रहते हुए जो तुम्हारी दिक्कत है, वह मैं समझ सकता हूं।'

उसके चेहरे पर झल्लाहट के भाव आ गए, पर उसने संयत स्वर में ही कहा, 'शादी तो मेरे घरवालों की मर्जी से होगी और, मुझे विश्वास है कि कोई भी इस बात के लिए तैयार नहीं होगा। मेरे घर-वाले भी कमोबेश मेरे ही जैसे हैं, पुरानी नैतिकता का ख्याल करने वाले। इसलिए, प्लीज, इस डिस्कशन को हमेशा के लिए खत्म समझिए।'

पराजय! एक बार फिर पराजय! मैं कहीं न कहीं पर क्रोध और अपमान की ज्वाला में उसके मन का और मन की उतनी दूरता पर मुग्ध था। तब भी नहीं सोच सका था कि मेरी ही आत्मकुण्ठित दृष्टि राजुल के पास भी होगी...!

देर तक इधर-उधर निरुद्देश्य घूमने के बाद जाने कब राजुल के घर पहुंच गया। मुझे देखकर खुशी की जो लहर उसके चेहरे पर दौड़ गई, वह मेरे चोट खाये अहं को सहलाने के लिए काफी थी। उसके साथ के कितने रोमांच-भरे क्षण मुझे याद आने लगे। कुछ ज्यादा ही देर मैं उसकी ओर टकटकी लगाए देखता रह गया था। वह शरमाकर पूछने लगी, 'ऐसे क्या देख रहे हो ?'

कितनी नायिकाओं ने अपने नायकों से इसी तरह यही प्रश्न किया होगा और जवाब में लोगों ने आकाश-पाताल के कुलावे बांध दिए होंगे। पर मैं तो दूसरी ही रौ में वह रहा था। कह गया, 'निन्नी तुम्हारी बचपन की सहेली है। उसके स्वभाव और चरित्र का आधा गुण भी तुमने लिया होता तो…।'

राजुल ने अचकचाकर मेरी तरफ देखा, फिर एक आहत भाव उसकी आंखों में समाता चला गया। अगले क्षण उसका चेहरा गुस्से से लाल पड़ गया था। मैं भी अपनी भूल समझ गया—होने वाली पत्नी से दूसरी लड़की की प्रशंसा कोई मूर्ख ही करेगा !

शायद निन्नी ठीक कहती थी, अभी अपने को समझना ही बाकी रह गया है।

आईने में झांकती एक-एक शिकन एक अलग कहानी है। एक तरफ राजुल से दूर हटने की कोशिश, दूसरी ओर राजुल को निन्नी जैसी बनाने की कोशिश। एक ओर निन्नी के पास आने की कोशिश, दूसरी ओर उसे प्रतिद्वंद्वी कक्ष में रखकर उसके गर्व और नैतिकता को तोड़ने की कोशिश। उलझनों का सिलसिला खींचकर यहां ले आया है तो आश्चर्य ही क्या है ?



बरसात के खुशनुमा दिन वैसे ही बेस्वाद, बेमजा बीत गए। हालांकि कार्यक्रम कुछ न कुछ पहले जैसा ही था—एक रविवार राजुल के घर, दूसरा अंग्रेजी पिक्चर का मॉर्निंग शो देखना, तीसरा निन्नी के

घर और चौथा चाचाजी के यहां। पर, बाहर से सब कुछ वही रहते हुए भी पहले जैसा कहां रह गया है! पहले जैसा उत्साह अब मुझमें नहीं है, यह राजुल महसूस करती है और चेहरा गिरा लेती है तो मैं उसे दोष भी कैसे दे सकता हूं! वह अब कम ही बोलती है। कम हंसती है। घूमने-फिरने के नाम पर ससकोच इन्कार कर देती है। सच कहूं तो इस स्थिति की मैंने कल्पना नहीं की थी। शायद मैं सोचता था कि मैं चाहे जो करूं, राजुल का आकर्षण मेरी ओर उसी तरह बना रहेगा। अब उसके सामने बैठने पर अपराधी जैसा महसूस करता हूं, इसमें खीझता भी हूं। सोचता हूं कि अगली बार या तो यहां आऊंगा ही नहीं, या दो-टूक फैसला अपने-आपसे करके आऊंगा, राजुल से शादी करनी है या नहीं। पर निर्णय लेना हर रोज उतना ही मुश्किल लगता है। इम्तहान के दिन करीब आए तो किसी तरह इन बातों को भूलकर पढ़ाई में लगा। विदेश की कल्पना इस परीक्षा के साथ जुड़ी हुई थी। यह भी लगता था कि दूर जाने पर शायद मैं निम्मी और राजुल दोनों को आसानी से भूल सकूंगा। हालांकि राजुल के प्रति यह अन्याय होगा। वह सचमुच मुझे चाहती है। रूठी आखों से मेरी तरफ वह एक अव्यक्त प्रतीक्षा में देखती रहती है कि पहले की तरह मैं उसका, सिर्फ उसका होकर उसकी ओर देखूं। मेरे बदलाव ने उसे किस कदर बदल डाला है, वह क्या मैं नहीं देख रहा हूं? पहले की उस शोख, गर्वीली, बात-बात पर खिलखिलाने वाली राजुल को मैंने खो दिया है। और निम्मी ···आरंभ में उसने जो दूरी रखी थी, अब तक वही बनाए हुए है, वहां एक इंच भी आगे बढ़ने की गुंजाइश नहीं है।

इम्तहान के बाद घर गया तो वहां सबके चेहरों पर मनहूसियत बिखरी हुई थी। ड्रामे में हमेशा फर्स्ट प्राइज पाने वाली और प्रोग्रामों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेने वाली बहन रुग्ण-सी, शॉल ओढ़े किचन के आसपास ही सारे दिन दिखाई पड़ी। दो ही दिन में यह बदली रंगत आंखों में चुभने लगी। न गर्मी का सून शो और पास-पड़ोस में जमी ताश पार्टियां, न सोमा की सहेलियों और दोस्तों का जमघट। पंजाबन भाभी का कुछ और अलगाव। मैंने सोमा से ही पूछा, 'तुम्हारा रिहर्सल

प्रैक्टिस वगैरह बंद दिखाई देती है, कुछ बीमार हो क्या आजकल ?'

"नहीं, ऐसे ही ''मन ही नहीं करता।' वह बुझे स्वर में बोली।

'लगता है, कपिल से झगड़ा हो गया है। है न यही बात ? कल से हजरत एक बार भी न तो दिखाई पड़े, न फोन ही आया।'

मैंने छेड़ा तो वह आहत दृष्टि से मुझे देखकर ओंठ भींचती हुई बोली, 'कपिल की शादी हो गई है।'

वह अपने आंसू रोकती चली गई तो मामला मेरे आगे साफ हो गया। कपिल से सोमा के विवाह की बात लगभग पक्की ही थी। मम्मी इतने बड़े बिजनेसमैन के लड़के से बेटी की शादी की बात सबके बीच फख्र के साथ किया करती थीं। अब सोमा के साथ उन्हें भी सबके सामने जाने में शर्म आती होगी। शायद ऐसी ही अनुभूति राजुल और उसके परिवार वालों को हो रही होगी। मैंने उसी एक क्षण में निश्चय कर लिया कि राजुल को ऐसे किसी हाल में नहीं छोड़ूंगा। उसी से शादी करूंगा। शादी के बाद ही बाहर जाऊंगा। पर, विदेश जाने की बात भी अधर में रह गई थी। शाम को पापा से मैंने इस बारे में जिक्र किया तो वह गंभीर मुद्रा में बोले, 'तुमसे रात में बातें करूंगा। मेरे चैंबर में आ जाना।'

उनकी गंभीरता में कुछ था, जो बेचैन करता था। मैंने अब तक उन पर ध्यान नहीं दिया था। वह भी कुछ पराजित, परेशान-से नजर आ रहे थे, हालांकि उनके पेशे की व्यस्तता और चिंता में यह छिप जाता था।

रात में गया तो वह मेरी प्रतीक्षा में ही थे। कुछ क्षण के ऊहापोह के बाद उन्होंने कहना शुरू किया, 'शायद तुम्हें पता चल गया होगा कि सोमा की शादी अब कपिल से नहीं हो रही'''।'

'जी,' मैंने कहा, 'सोमा के लिए यह बहुत बुरा हुआ।'

'सिर्फ सोमा के लिए नहीं, तुम्हारे लिए भी।' पापा बोले, 'पिछले महीने हमें सोमा का चुपचाप एबॉर्शन करवाना पड़ा। तुम्हारी मम्मी उसे लेकर बंबई गई थीं। काफी खर्च भी हुआ। अब उसकी शादी एक जगह ठीक हुई है, वे लोग बहुत दहेज मांग रहे हैं'''इसलिए'''पहले

तो दहेज का सवाल नहीं था न!'

खबर एक धमाके-सी थी। मैं समझकर चुप ही रहा। पैसे इधर खर्च होने वाले हैं, इसलिए मेरी विदेश-यात्रा के लिए नहीं मिल सकेंगे ···बेशक इस वक्त सोमा का जीवन देखना है।

'अब तुम्हें विदेश भेजना संभव नहीं होगा। बेहतर यही होगा कि शादी कर लो और ससुराल के खर्चे पर आगे स्टडीज़ के लिए जाओ या फिर, कुछ साल यहीं रहकर अर्न करो।'

पापा ने साफ-साफ कहा और मायूसी से मेरी तरफ देखकर उठ खड़े हुए। बेचारे पापा! सोमा और मैं उनके सपनों के केंद्र थे। जीजी हर बात में साधारण थी। उनकी शादी भी पापा ने अट्ठारह की उम्र में ही कर दी थी। भैया को उन्होंने डॉक्टर बनाना चाहा, पर वह बैंक के क्लास टू अधिकारी होकर रह गए। अब वे न तो सोमा की खुशी के लिए विशेष कुछ कर पा रहे हैं, न मेरे कैरियर के लिए।



लेकिन मन की गति को भूलभुलैया में डाल देने वाली पगडंडियां सिर्फ मेरे इर्द-गिर्द तो नहीं थीं! राजुल के पास वापस लौटकर आया और उसका हाथ अपने हाथ में लेकर पूरी ईमानदारी के साथ ब्याह और ब्याह के बाद विदेश साथ चलने की बात की तो वह निवन हंसी हंसने लगी—'समझी! पहले निम्मी के लिए मुझे छोड़ने को तैयार हो रहे थे, अब रुपयों की खातिर मुझसे शादी के लिए तैयार हो रहे हो! न तो इसमें मैं ही कहीं हूं और न मेरा प्यार! मेरी कोई अपनी कीमत नहीं है, है न?'

मैं इस प्रतिक्रिया के लिए तैयार नहीं था। संभलकर बोला, 'तुम्हारा ख्याल गलत है राजुल! पहले भी मेरी जिंदगी में तुम्हीं थीं। चलो, विदेश की बात रहने देते हैं। मैं खुद कमाकर बाद में भी जा सकता हूं। अब तो तुम्हें एतराज नहीं होगा न?'

उसने व्यंग्यपूर्वक कहा, 'तुम्हारा जो रूप मुझ पर जाहिर हो चुका

है, उस पर पर्दा डालने की कोशिश कर रहे हो। मैं वताऊं, मैं क्या करूंगी ? मैं तुमसे शादी नहीं करूंगी। मैं अभी किसी से शादी नहीं करूंगी। मेडिकल कंप्लीट करके पहले खुद कुछ वनूंगी। भूल जाओ कि मैं एक वेजान खिलौना हूं, जिसे भैया ने तुम्हारी तरफ उछाल दिया और तुम्हारे जी में आया तो थामा या गिर जाने दिया।'

मैं अवाक् उसे देख रहा था। उसका गुस्सा मैं पहले भी देख चुका था, पर यह दृढ़ता, यह ओजस्विता उसमें नहीं देखी थी। क्या सचमुच अपना निर्णय आप लेने की ताकत राजुल में आ गई है ? कुछ खामोशी-भरे क्षणों के वाद मैंने आग्रहपूर्वक कहा, 'तुम अभी गुस्से में हो, फिर इस वारे में सोचना, ठंडे दिमाग से।'

'मुझे तुम्हारे वारे में सोचना नहीं, सिर्फ तुम्हें भुला देना है।' उसने कहा।

'भुला सकोगी राजुल ?'

मेरा स्वर अचानक व्यग्र हो उठा था। राजुल की आंखों में चमक आई आंसू की वूंदें भी मुझे तभी दीख गईं—वह अव भी मुझे चाहती थी। अव भी···।□

८. विजयेंद्र

एक अर्से के वाद अपने देश की जमीन पर पांव रखने का सुख भी कैसा अनोखा होता है ! नई-पुरानी यादें वादलों की तरह मन के आकाश को घेरने लगी थीं और हर वादल जैसे अभी-अभी झर जाने को आतुर। सव कुछ वीते कल की वात लग रही थी। मां, वावूजी का अपरिमित प्यार, भाभी का स्नेह और दुलार, दोस्तों का साथ···छोटी-वड़ी कितनी घटनाएं यादों [illegible] रही [illegible] हुए शहर के

फूले कलेवर में मैं अतीत के चिह्न तलाशने में ही खोया था कि घर आ गया।

'लो, घर आ गया।' साथ बैठे भैया ने मुस्कराते हुए कहा और मैं चकित होकर एक बार उन्हें, फिर घर को देखने लगा। हालांकि भैया ने मकान के और लॉन या बरामदे में खड़े परिवार के सदस्यों के फोटो मुझे भेजे थे, मगर सामने देखकर हैरान हुए बिना नहीं रह सका। मेरे मुंह से बेसाख्ता निकल गया, 'कमाल कर दिया भैया आपने तो! क्या शानदार बनवाया है!'

भैया गर्व से हंस दिये, 'सिर्फ बनवाया ही नहीं, उतनी ही खूबसूरती से मेंटेन भी किया है। अभी देखोगे!'

लॉन में खिले बड़े फूलों को मैं देखता रहा और गाड़ी फाटक से पोर्टिको तक धीरे-धीरे चलती रही। शायद सिर्फ मुझे ही उसकी गति बेहद कम लग रही थी। एक बार तो मन में आया कि उतरकर दौड़ता हुआ घर में जा पहुंचूं। यह दूरी हमेशा दौड़कर पार करने की मेरी आदत जो थी।

'मेंटेन' करने से भैया का क्या तात्पर्य था, यह मेरी समझ में आ गया, जब पोर्टिको के सामने तीन वावर्दी नौकर चुस्ती से खड़े नजर आए। तभी इतनी देर के बाद मुझे उस अभाव का तीव्रता से अहसास हुआ, जो घर से दूर होने की वजह से दबा-ढका था। अम्मा नहीं थी। मैं चोट खाया-सा सीढ़ियों के पास खड़ी राजुल, मंजुल, अनूप, लवली और भाभी को ताकता रह गया, जैसे उनके पीछे से अभी-अभी अम्मा आ खड़ी होंगी। अपनी नम होती आंखों को मैंने भाभी के पैरों पर झुककर छिपाया, फिर अनूप और लवली को थपथपाने लगा। लवली तो मेरे जाने के बाद पैदा हुई थी। अनूप छोटा-सा था। राजुल और मजुल भी कितनी बड़ी हो गई थी! कितना बदला-बदला लग रहा था सब कुछ!

'बाबूजी कहां हैं?' मैंने पूछा तो भाभी, मजुल, अनूप और लवली मेरे साथ हो लिए। भैया कोर्ट जाने की तैयारी करने की बात करके चले गए। असाधारण ढंग से सजे लंबे-चौड़े ड्राइंगरूम को पार करके

बरामदे के अंतिम छोर पर बाबूजी का कमरा आया। पहले यह कमरा अम्मा का पूजाघर था। इससे लगा छोटा भंडारघर। भाभी ने बतलाया कि उसमें बुआ रहती थीं अब। पूजाघर में दूसरी तरफ भी दरवाजा लग गया है, बाबूजी से मिलने आने वाले उधर से ही आते हैं।

'अरे हां! बुआ दिखाई नहीं पड़ीं?' मेरे पूछने पर भाभी ने कहा, 'बाबूजी के पास ही होंगी।'

'और उदय···? आया है न?'

भाभी ने अचकचाकर मेरी तरफ देखा, फिर बोलीं, 'वो···नहीं, वो तो नहीं आए हैं।'

मुझे कुछ अजीब-सा लगा। ठीक है, उदय नहीं आ सका होगा कॉलेज से, मगर भाभी ऐसे क्यों देख रही थीं, जैसे मैंने कोई नई बात कह दी हो?

बाबूजी पूरी बांह का स्वेटर पहने पलंग के सिरहाने से टिककर बैठे थे। वह इतने दुबले और बूढ़े लगने लगे होंगे, इसकी मैंने कल्पना नहीं की थी। मेरी आंखें भीग आईं और वह भी मेरे सिर पर हाथ रखते हुए रो दिए। अपनी कमजोरी पर लज्जित होकर फिर वह बोले, 'चलो, तुम्हें देख लिया। लगता था कि शायद मिल नहीं पाऊंगा!!'

कुछ ऐसा ही मैं महसूस कर रहा था। यहां जल्दी आने का पत्र मुझे मिला, तब पहली बात यही मन में आई थी कि कहीं अम्मा की तरह बाबूजी के अंतिम दर्शन से भी वंचित न रह जाऊं।

तभी एक तरफ खड़ी [illegible] दिखाई दीं। मैं उनकी ओर बढ़ा तो उन्होंने मुझे गले से लगा [illegible] लगीं [illegible] देखकर मुझे खुद रोना आ रहा था। क्या [illegible] में बैठकर जैसे

मे सामने पड़कर तुम्हारा शगुन खराब करती ?'

सुनकर मुझे चोट लगी। मैंने नाराजगी-भरे स्वर मे कहा, 'देखो बुआ! यह सब फिर कहा न, तो ठीक नहीं होगा। तुमसे मेरा अनिष्ट होगा कभी? क्या बात करती हो तुम भी!'

बुआ अपनी भीगी आंखें पोंछती बाबूजी की तरफ देखकर मुस्कराईं, 'देखा न भैया, मैं कहती ही थी। विजय भला बदलने वाला है? अभी तक वही मिजाज है!'

'क्यों, बाहर जाने से बदलना जरूरी होता है क्या?' मैंने कहा।

'होता ही होगा। अपने भैया से मिले न? खुद तो खुद, सारे घर को बदलकर रख दिया है।'

उनके स्वर मे शिकायत जैसा कुछ था। इसी समय भाभी ने दबे स्वर मे पूछा, 'साथ मे मेम-सेम तो नही लाए है बबुआजी?'

भाभी भी खूब हैं! बाबूजी के सामने ही छेड़ दिया! उन्हें चिढ़ाने के लिए 'हा' कहना चाहता था, पर तभी दिखाई दे गया कि बाबूजी, बिंदा मामा, बुआ सब बडी गंभीर उत्सुकता मे मेरी तरफ देख रहे थे। मैंने सहास्य कहा, "मैं इतना बडा अपराध कैसे कर सकता था भला! आपने मेरी शादी अपने गांव की उस मगन से जो तय की हुई थी।"

सब हंसने लगे, यहा तक कि बाबूजी के ओठों पर भी हंसी की रेखा थिरक उठी। भाभी मुह दबाकर हंसी और बोली, 'भूल गए? मगन तो आपकी दूसरी बीवी बननेवाली थी, पहली शादी तो आपकी निन्नी से ठीक की थी मैंने।'

'निन्नी? वो कलूटी, बलकटी! न, उससे तो मगन ही भली!'

मैंने वैसी ही निर्दोष हसी हसने की कोशिश की। पता नही सफल हुआ या नहीं। पिछले कुछ वर्षों मे यहा से गए पत्रों मे 'उस घर' का जिक्र ही कहां होता था? मैं ही कभी लिखकर पूछता तो जवाब में एक लाइन लिखकर आता था—वो फलां जगह पोस्टेड है अभी, ठीक ही होंगे। रिटायर्ड होने के बाद यहीं आएंगे। वह वाला मकान उन्होंने खरीद लिया है।

ऐसे में निन्नी का जिक्र? भाभी शायद यों ही पुरानी यादों को

बरामदे के अंतिम छोर पर बाबूजी का कमरा आया। पहले यह कमरा अम्मा का पूजाघर था। इससे लगा छोटा भंडारघर। भाभी ने बतलाया कि उसमें बुआ रहती थीं अब। पूजाघर में दूसरी तरफ भी दरवाजा लग गया है, बाबूजी से मिलने आने वाले उधर से ही आते हैं।

'अरे हां! बुआ दिखाई नहीं पड़ीं?' मेरे पूछने पर भाभी ने कहा, 'बाबूजी के पास ही होंगी।'

'और उदय...? आया है न?'

भाभी ने सकपकाकर मेरी तरफ देखा, फिर बोलीं, 'वो...नहीं, वो तो नहीं आए हैं।'

मुझे कुछ अजीब-सा लगा। ठीक है, उदय नहीं आ सका होगा कॉलेज से, मगर भाभी ऐसे क्यों देख रही थीं, जैसे मैंने कोई नई बात कह दी हो?

बाबूजी पूरी बांह का स्वेटर पहने पलंग के सिरहाने से टिककर बैठे थे। वह इतने दुबले और बूढ़े लगने लगे होंगे, इसकी मैंने कल्पना नहीं की थी। मेरी आंखें भीग आईं और वह भी मेरे सिर पर हाथ रखते हुए रो दिए। अपनी कमजोरी पर लज्जित होकर फिर वह बोले, 'चलो, तुम्हें देख लिया। लगता था कि शायद मिल नहीं पाऊंगा!!'

कुछ ऐसा ही मैं महसूस कर रहा था। यहां जल्दी आने का पत्र मुझे मिला, तब पहली बात यही मन में आई थी कि कहीं अम्मा की तरह बाबूजी के अंतिम दर्शन से भी वंचित न रह जाऊं।

तभी एक तरफ खड़ी बुआ दिखाई दीं। मैं उनकी ओर बढ़ा तो उन्होंने मुझे गले से लगा लिया और रोने लगीं। उन्हें देखकर मुझे खुद रोना आ रहा था। क्या से क्या हो गई थीं वह। वीराने में बैठकर जैसे कोई मौत की आहट सुन रहा हो। वैधव्य ने जिंदगी की रंगीन रेखाएं उनके चेहरे से पोंछ-सी डाली थीं।

'तुम बाहर क्यों नहीं आईं बुआ, पांच मिनट पहले ही तुमसे मिल लेता...।' मैंने कहा।

वह धीरे से हंस पड़ीं, 'अब तो हो गया न मिलना?'

एक क्षण रुककर उन्होंने कहा, 'इतने दिनों पर तो लौटे हो...

में सामने पड़कर तुम्हारा शगुन खराब करती ?'

सुनकर मुझे चोट लगी। मैंने नाराजगी-भरे स्वर में कहा, 'देखो बुआ! यह सब फिर कहा न, तो ठीक नहीं होगा। तुमसे मेरा अनिष्ट होगा कभी? क्या बात करती हो तुम भी!'

बुआ अपनी भीगी आंखें पोंछती बाबूजी की तरफ देखकर मुस्कराईं, 'देखा न भैया, मैं कहती ही थी। विजय भला बदलने वाला है? अभी तक वही मिजाज है!'

'क्यों, बाहर जाने से बदलना जरूरी होता है क्या?' मैंने कहा।

'होता ही होगा। अपने भैया से मिले न? खुद तो खुद, सारे घर को बदलकर रख दिया है।'

उनके स्वर में शिकायत जैसा कुछ था। इसी समय भाभी ने दबे स्वर में पूछा, 'साथ में मेम-टेम तो नहीं लाए हैं बबुआजी?'

भाभी भी खूब है! बाबूजी के सामने ही छेड़ दिया! उन्हें चिढ़ाने के लिए 'हां' कहना चाहता था, पर तभी दिखाई दे गया कि बाबूजी, बिंदा मामा, बुआ सब बड़ी गंभीर उत्सुकता से मेरी तरफ देख रहे थे। मैंने सहास्य कहा, "मैं इतना बड़ा अपराध कैसे कर सकता था भला! आपने मेरी शादी अपने गांव की उस मंगन से जो तय की हुई थी।"

सब हंसने लगे, यहां तक कि बाबूजी के ओठों पर भी हंसी की रेखा थिरक उठी। भाभी मुंह दबाकर हंसी और बोली, 'भूल गए? मंगन तो आपकी दूसरी बीवी बननेवाली थी, पहली शादी तो आपकी निन्नी से ठीक की थी मैंने।'

'निन्नी? वो कलूटी, बलकटी! न, उससे तो मंगन ही भली!'

मैंने वैसी ही निर्दोष हंसी हंसने की कोशिश की। पता नहीं सफल हुआ या नहीं। पिछले कुछ वर्षों से यहां से गए पत्रों में 'उस घर' का जिक्र ही कहां होता था? मैं ही कभी लिखकर पूछता तो जवाब में एक लाइन लिखकर आता था—वो फलां जगह पोस्टेड है अभी, ठीक ही होंगे। रिटायर्ड होने के बाद यहीं आएंगे। वह वाला मकान उन्होंने खरीद लिया है।

ऐसे में निन्नी का जिक्र? भाभी शायद यों ही पुरानी यादों को

महज़ना ने इन लोगों का शायद दूर का भी संबंध नहीं था। इससे भी बुरी बात यह थी कि भैया इनमें पूरी तरह घुले-मिले, इनमें से ही एक लग रहे थे। भैया के परिप्रेक्ष्य में मेरे न बदलने की बात पर बुआ और बाबूजी मुग्ध क्यों नजर आ रहे थे, यह भी इस वक्त समझ में आ रहा था। इसी समय एक महाशय बोल उठे, 'तुम बड़े लकी हो रमाशंकर, इतने खूबसूरत भाई-बहन किसे मिलते हैं ? बहन पढ़ने में बिजली गिरा रही है, अब देखें, भाई कितने दिलों की तमन्ना बनता है !' कहकर वह उभरे मसूड़ों वाले अधेड़ सांवले सज्जन ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगे। और लोग भी हंसे और मैंने आश्चर्य से देखा कि भैया भी उनमें से एक थे। बहन की चर्चा मुझे यहां अप्रासंगिक और अवांछित लग रही थी और मैं गंभीर हो उठा था। शायद यही देखकर वे सज्जन, जिनका नाम भैया ने दत्त बतलाया था, एक आंख दबाकर हंसते हुए मेरी ओर मुड़े, 'यू लुक पेक मी फॉर द कम्पलीमेंट !'

'माफ कीजिए, अभी हमारे बीच ऐसी बेतकल्लुफी पैदा नहीं हुई !'

मैंने अपनी खीझ दबाते हुए बनावटी नम्रता के साथ कहा तो वह कुछ खिसियाने से हो उठे। मैं उठता हुआ भैया से बोला, 'भैया अभी हाजिर होता हूं। देखूं, उदय आया या नहीं "बिंदा मामा को भेजा था।'

भैया के माथे पर शिकन आ गई। वह गंभीर स्वर में बोले, 'तुमने बुलवा लिया है तो कोई बात नहीं, मगर तुम आगे भी उससे मिलो-जुलोगे तो मुझे पसंद नहीं आएगा। उदय शरीफ घर के लड़कों से मिलने लायक नहीं रह गया है।'

'कौन, उदय ? क्या किया है उसने ?' मैंने ताज्जुब से पूछा। क्या यह संभव था ? उदय, जो खुद शराफत और सहृदयता का दूसरा नाम था, ऐसा भी कर सकता था कि शरीफ घर के लड़कों [illegible] लायक भी न रहे ? मेरे लिए विश्वास करना मुश्किल था।

'करेगा क्या, वही जो रईसों के [illegible] [illegible] विल टेल यू लेटर ऑन !'

भैया ने नफरत की भंगिमा बनाई फिर [illegible] लगे। मैं बाहर निकलकर बरामदे में बेचैनी से टहलने [illegible]

वारे में ठीक-ठीक कौन वतला सकता था ? भाभी ? या वावूजी ? वुआ से कुछ पूछना तो उन्हें दुखी कर देना था। उदय को, और उदय के साथ-साथ मुझे, वह सगे वेटों की तरह चाहती थीं। अपने पुत्र के अभाव को उन्होंने उदय से ही भुलाया था। ऐसा तो नहीं कि भैया को कोई भ्रम हो गया हो ? वरामदे में लगी मरकरी ट्यूब की रोशनी थोड़ी दूर तक गई थी, फिर फाटक तक कृष्ण पक्ष का अंधेरा विखरा था। मैं उसी अंधेरे में निगाहें गड़ाए बिंदा मामा के आने की प्रतीक्षा कर रहा था। आखिर बिंदा आया। आकर उसने वतलाया, 'उदय भैया तो नहीं मिले। वह होस्टल में रहते ही नहीं हैं। लड़के वतला रहे थे कि शहर में कहीं किराये के मकान में रहते हैं।'

'लेकिन, चिट्ठी तो मैं उसे होस्टल के पते पर ही लिखता था ?' मैंने जैसे अपने-आप से कहा।

'हां, यही तो मैंने कहा।' बिंदा वोला, 'जो कमरा आपने वतलाया था, उसमें रहने वाले वावू ने कहा कि उदय भैया खुद वहां आकर चिट्ठियां ले जाते थे।'

मैंने मायूसी से बिंदा की तरफ देखा। तव शायद भैया ठीक ही कह रहे होंगे, नहीं तो कम-से-कम मुझसे वह इतना छल नहीं करता। अपना सही पता वतलाने में झिझक क्यों है ? जरूर किसी ऐसी-वैसी संगत में पड़ गया है, तभी तो घर भी नहीं आया मिलने।

क्रोध की अधिकता और विवशता से मेरा मन क्षुब्ध हो उठा। पैसे वाले लड़के किस तरह खराव होते हैं, इसकी ढेर-सी कहानियां खयाल में उभरने लगीं। शराव और औरत···। क्या उदय भी वैसा हो गया होगा ?

'उनका यह पता कमरे वाले वावूजी ने लिखकर दिया है।' बिंदा ने एक कागज मेरी तरफ वढ़ा दिया। तभी भैया का अर्दली भी आ पहुंचा, 'साहव, आपको खाने के लिए वुला रहे हैं।'

'आता हूं।' मैंने वेमन से कहा। डाइनिंग टेवल पर ढेर सारी चीजें थीं। भैया एक-एक चीज की तारीफ करके दोस्तों को खिला रहे थे। पर, मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। भैया ने एक वार आंखें

उठाकर मेरी तरफ देखा, कुछ कहने को हुए, मगर फिर चुप लगा गए। रात-भर फिर मुझे नींद नहीं आई।



सवेरे फिर किसी के उठने से पहले ही वह छोटी पुर्जी जेब में लिए मैं उदय को ढूंढने निकल पड़ा। उसके बिना वापस लौटने की मेरी खुशी अधूरी थी। अपने प्रवास के संस्मरण मैं किसे सुनाता? छोटी-छोटी खुशियों और निराशाओं की बात बतलाकर अपनी उन अनुभूतियों में किसे शामिल करता? यहां के उतार-चढ़ाव की गाथा भी मुझे उस तरह कौन सुनाता, जिस तरह कि मैं सुनना चाहता था? मुझे आज ही प्रतीत हुआ कि उदय के अतिरिक्त और किसी को मैंने अपने उतना करीब आने ही नहीं दिया था, मात्र-भर का परिचय रखा। क्या अब नये सिरे से मैं मित्र बना पाऊंगा या यह अभाव सदा के लिए रह जाएगा? मुझे याद आ रहा था कि किस तरह गर्मी की छुट्टियों में मैं उदय के साथ उसके गांव चला जाया करता था, बुआ के पास। दुर्गा-पूजा की छुट्टियों में बुआ ही उदय को लेकर आती थी। मैट्रिक के बाद तो उदय यहीं आ गया था। हम दोनों साथ-साथ ही कॉलिज जाते थे, एक ही साइकिल पर। कभी वह चलाता था, कभी मैं। बेहद लजालु और कोमल स्वभाव का था तब उदय। निन्नी को लेकर मैं जब राजुल को खिझाता था, तब वह बाद में मुझे समझाने लगता था, 'यह तुम्हारी बड़ी बुरी आदत है। अब निन्नी राजी जितनी गोरी और सुंदर नहीं है तो इसमें उस बेचारी का क्या दोष है? यह देखो कि सभी से कितना स्नेह रखती है। खूब हंसती-हंसाती है। मान लो, वही तुम्हारी सगी बहन होती, तब?'

'तब क्या, मैं तो तब और भी चिढ़ाता।' मैं कहता था और सोचने लगता था कि सचमुच मैं उसके इतना पीछे क्यों पड़ा रहता था? यों तो मुझे अच्छी ही लगती थी वह।

उदय से इसी तरह की बातों के पश्चात् मैं एक दिन सो गया

था और तव सपने में निन्नी को देखा था। वह आंखों में आंसू लिए मुझसे पूछ रही थी—'मैंने आपका क्या विगाड़ा है? मेरे वारे में उलटी-सीधी वातें क्यों करते रहते हैं आप? क्या मैं यहां आना छोड़ दूं?'

मैंने सपने में उससे जो कुछ कहा था वह मुझे आज भी याद था। मैंने उसके आंसू पोंछकर वड़े कोमल स्वर में कहा था, 'वह तो मैं झूठ-मूठ कहता रहता हूं। मुझे तो तुम वहुत अच्छी लगती हो। सच! वोलो, अव नाराज नहीं हो न? आया करोगी न?'

उसके आंसू पोंछते हुए मुझमें जो विद्युत् तरंग-सी दौड़ गई थी, अपने भीतर से उमड़ी वह कोमलता जिस तरह मुझे सरावोर कर गई थी, वह सव मुझे आज तक याद था।



मछुआटोली के अंदर गली में कई जगह पूछने पर मकान का पता लग पाया। वह एक जीर्ण दो-मंजिला मकान था। मुख्य दरवाजा खुला ही हुआ था। मैंने भीतर थोड़ा झांककर देखा। एक छोटे-से आंगन के चारों तरफ वरामदा था, जिसमें टूटे वदरंग दरवाजे कमरों का अस्तित्व वतला रहे थे। आंगन में एक तरफ नल से पानी वह रहा था। एक सांवला-सा युवक वहां गीले वदन अपने कपड़े धो रहा था। वरामदे के सिरे पर दूसरा युवक अल्यूमीनियम की काली पतीली को राख से रगड़ रहा था। वरामदे में थोड़ी-थोड़ी दूरी पर दो चूल्हे जल रहे थे, जिन पर कुछ पक रहा था। मैंने उदय के वारे में पूछा तो पता लगा कि वह ऊपर रहता है। एक युवक मुझे अंधेरे में डूबी संकरी सीढ़ियों तक पहुंचाकर चला गया। मैं धीरे-धीरे टटोलता हुआ ऊपर गया। सामने छत थी, जिस पर सुवह की रोशनी फैली हुई थी। एक तरफ सटे हुए तीन छोटे कमरे थे। सव पर खड़िया से नाम लिखा हुआ था, इसलिए उदय का कमरा ढूंढ़ने में मुझे परेशानी नहीं हुई। असल परेशानी मुझे मकान के माहौल से हो रही थी। उदय के वारे में जो सव सोचता आ रहा था,

उसमे इस घर का सामंजस्य बैठाना मुश्किल था। मैं कमरे की माल्ल बजाने ही जा रहा था कि दरवाजा अपने-आप खुल गया। पैंट और पुराने रंग उड़े कोट में मेरे आगे उदय ही खड़ा था। हम दोनों अवाक् एक-दूसरे की ओर देख रहे थे। फिर वही आगे बढ़कर मेरे गले से लगता हुआ बोला, 'अरे विजय···तुम ! आओ, अंदर आ जाओ।'

मैं भीतर आ गया और फिर मेरी मकपकाहट स्वतः समाप्त हो गई। कमरे में किसी स्त्री की उपस्थिति का कोई चिह्न नहीं था। छोटा-सा कमरा, अलकतरे से पुते दरवाजे-खिड़कियां। पुराने ढंग के ताक पर रखी किताबें, कॉपियां और इस्तेमाल की दूसरी चीजें। एक बंमलट पर फैला उदय का बिस्तर था, जिसमें रजाई की हालत खराब हो रही थी। मैं आहत-सा एक से दूसरी चीज पर निगाह दौड़ाता कमरे के बीचोबीच निश्चल खड़ा रह गया। कोई भी चीज पहले वाले उदय से तनिक भी तो मेल नहीं खाती थी।

'बस, चाय पीने ही निकल रहा था। तुमने भी तो अभी नहीं पी होगी न ? बैठो, लेकर आता हूं। फिर बातें करते हैं।' उदय ने कहा और प्लास्टिक का एक मग हाथ में उठा लिया। वह जाने को हुआ, तब कहीं मैं सचेतन हुआ।

'ठहरो उदय !' मैंने उसे रोका, 'पहले यह बताओ, यह सब क्या है ?'

उदय मुस्कराने लगा, 'बैठो तो, अभी आकर बतलाता हूं।'

'नहीं, पहले मैं जानना चाहता हूं···अभी, तुरंत। जानते हो, कल शाम विदा मामा को मैंने तुम्हारे होस्टल भेजा था। रात-भर मैं सो नहीं सका। मुझसे इतना झूठ बोलने की तुम्हें क्या जरूरत पड़ गई ? आखिर यह है क्या ?'

'यह किराये का एक मकान है भई, गरीब विद्यार्थी यहां सस्ते में रह लेते हैं, और तो कुछ नहीं।'

उदय अब भी मुस्करा रहा था।

'लेकिन, तुम कब से गरीब हो गए ?' मेरे स्वर में रोष था।

उदय हंसा—'आदमी के हाथ में जब रुपया-पैसा नहीं रहता, तब

वह गरीब कहलाता है, इतना तो तुम भी जानते होगे। बस, अब तुम्हारे दूसरे सवाल का जवाब लौटकर दूंगा, तब तक आराम से बैठो।'

उदय चला गया और मैं भौचक्का-सा बैठा रह गया। उदय जो कुछ कह रहा था, सच था। हर चीज इसकी साक्षी दे रही थी। पर, उदय गरीब कैसे हो गया? बुआ की ससुराल की जमीन-जायदाद क्या कम थी? फिर, तीनों भाइयों में सबसे छोटा, सबसे लाड़ला उदय। दोनों फूफाओं के मरने के बाद सबका स्वामी यही तो हुआ। बुआ की सिर्फ लड़कियां थीं और फूफा के बड़े भाई निस्संतान ही थे। अगर यह सच है तो इतना बड़ा हादसा घटित कैसे हुआ?

उदय चाय लेकर जल्दी ही आ गया। मग की चाय का आधा एक शीशे के गिलास में निकालकर उसने मुझे दिया और खुद मग में ही पीने लगा। साथ में लिफाफों में ब्रेड-मक्खन और जलेबियां भी उदय ले आया था, मगर मुझसे कुछ खाते ही नहीं बन रहा था। उदय ने कहा, 'खाओगे नहीं? मुझसे नाराज हो? सच कहता हूं, तुमने अगर लिखा होता कि किस ट्रेन से आ रहे हो तो मैं जरूर स्टेशन आ गया होता। तुमसे मिलने की व्यग्रता मुझमें क्या कम थी? अच्छा हुआ कि तुम आ गए, वरना जाने कब मुलाकात हो पाती!'

उसके मुख पर उदासी की रेखाएं तैर आईं। मैंने चौंककर पूछा, 'क्या मतलब? तुम स्टेशन आ सकते थे, घर पर नहीं? यह क्या बात हुई?'

'कुछ ऐसी ही बात है भाई!' वह उदास पर रूखे लहजे में बोल रहा था।

मैं सहसा बहुत दुखी हो उठा। बोला, 'तुमने भी मुझे अपना नहीं समझा न उदय! बुआ, बाबूजी, भाभी, मैया, किसी ने मुझे कुछ नहीं लिखा। तुम झूठमूठ होस्टल के पते पर चिट्ठी मंगवाकर मुझे धोखा देते रहे!'

उदय तिक्त हंसी के साथ बोला, 'मैं तो खुद ही धोखा खाने में लगा था, तुम्हें क्या धोखा देना? बताओ, आज देखकर तुम्हें तकलीफ हो रही है तो वहां यह सब जानकर क्या तुम बेकार चिंतित नहीं होते?

रही बात और लोगों की, तो तुम्हारे बाबूजी या तुम्हारी भाभी को तो सारी बातें भी मालूम नहीं। उनसे जिक्र भी मत करना। बेचारे यों ही बीमार और लाचार हैं···सुनेंगे तो बेकार दुख होगा। खैर, छोड़ो! अपनी सुनाओ, कहां-कहां घूम आए?'

'लेकिन क्या हुआ है, बतलाओगे नहीं?'

'भाभी चाहेंगी तो वही बताएंगी। मैंने उन्हें वचन दिया है विजय!' उदय ने कहा, फिर बोला, 'अब तो परेशानी के दिन खत्म ही होने वाले हैं। फाइनल इम्तहान का रिजल्ट आउट होने वाला है। फर्स्ट क्लास की उम्मीद भी कर रहा हूं। बस, सब ठीक हो जाएगा···।' उदय बेहद गंभीर हो उठा था। मैं भी भारी मन से उठ खड़ा हुआ। उदय ने ही कहा, 'मैं रात को आठ बजे के बाद यहीं रहता हूं विजय, फिर आना।'

'और दिन में? कॉलिज तो अब जाते नहीं होगे?' मैंने पूछा तो वह बोला, 'जिंदा रहने के लिए कोई न कोई चर्खा चलाते रहना पड़ता है न!'

'वह भी न बताने की कसम खाए हुए हो?'

'नहीं, मगर सुनकर तुम्हें अच्छा नहीं लगेगा। खैर, बतला ही देता हूं—दो-तीन ट्यूशन मिल गए हैं। एक जगह साइंस की किताब छप रही है, उसमें प्रूफ पढ़ने जाता हूं—यही सब है। प्लीज, भाभी से मत बतला देना। पूछें तो कहना, आराम से है। वह बेचारी हमेशा एक न एक जेवर बेचकर खर्च चलाने के लिए मुझे दे जाती हैं। मैं उन्हें कैसे बेच सकता हूं, तुम्ही बतलाओ?' कहकर उदय शर्मिंदा-सा मुझे देखने लगा। मेरी आंखों में अचानक आंसू आ गए।

अपनी आंखें पोंछकर मैंने कहा, 'अच्छा, फिर रात में आऊंगा। मैं भी तुम्हारे साथ वैसी मोटी रोटियां पकाऊंगा, जैसी तुमने ढककर रखी हैं।'

वह चाय लाने गया था, तभी मैंने उलट-पुलटकर देखा था। रात की बनी चार मोटी रोटियां और पांच-छः उबले आलू जतन से ढककर रखे थे। मूली, अदरक और हरी मिर्चों में नीबू डालकर अचार डालने

का प्रयास किया गया था। दफ्ती के टूटे डिब्बे में कोयला संभालकर रखा हुआ था। पहनने के लगभग सारे कपड़े कहीं न कहीं से फटे हुए थे।

उदय इस बार हलके मन से हंसा, 'नहीं, अब तो पतली रोटियां भी बना लेता हूं। कल जरा जल्दी में था, इसी से मोटी बना डाली थीं। लेकिन, तुम आओगे तो गोभी-मटर वाली खिचड़ी बनाकर खिलाऊंगा तुम्हें, फर्स्ट क्लास ! इस जिंदगी का भी अपना ही लुत्फ है। बहुत कुछ देखने-सीखने को मिलता है।'

वह मुस्करा रहा था और मेरा मन फूट-फूटकर रोने को कर रहा था।



घर लौटते-लौटते मुझे दस बज गए थे। मेरे बिना बताये और बिना चाय-नाश्ता किए चले जाने से घर में सभी चिंतित थे। भाभी को मैंने बतला दिया कि मैं उदय से मिलने चला गया था और वहीं चाय वगैरह पी चुका हूं। भैया कोर्ट चले गए थे। नहाने के बाद मैं बाबूजी के पास बैठकर उन्हें अखबार पढ़कर सुनाने लगा, पर मेरी उदासी हटने का नाम नहीं ले रही थी। बाबूजी ने कुछ ही देर में इसे लक्ष्य कर लिया। मेरी तरफ देखकर बोले, 'तुम्हारा मन शायद नहीं लग रहा है ···कुछ दिनों के लिए उदय को होस्टल से बुलवा लो। मैंने भी बहुत दिनों से उसे नहीं देखा।'

मेरे स्वर में अनायास ही रोष आ गया था। मैंने कहा, 'उदय अब होस्टल में नहीं रहता, और, वह यहां आएगा भी नहीं ! भैया ने शायद उसे मना किया है···।'

कहते-कहते मैंने तीखी दृष्टि से बुआ की तरफ देखा। वह हतप्रभ हो उठी थीं। बाबूजी देर तक आश्चर्य से मुझे देखते रहे। बोले तो उनका लहजा चोट खाया था, 'क्या ? रमा ने उसे आने से मना किया है ? क्या अब उसने रिश्तेदारों को भी जलील करना शुरू कर दिया ?

कहां है रमा ? बुलाओ तो उसे !'

मुझे अपने कहने का अफसोस होने लगा। बाबूजी उग्र होते जा रहे थे। उनके माथे की नसें खिंच आई थीं और आंखों में बेचैनी समा गई थी। मैंने जल्दी से कहा, 'भैया कोर्ट चले गए हैं बाबूजी, मैं पता लगाकर आपको बतलाऊंगा और उदय को भी लिवा लाऊंगा। आप मुझ पर छोड़ दीजिए।'

बाबूजी कुछ देर में शांत हो गए, पर व्यथित बने रहे। कुछ रुक-रुककर विवश उच्छ्वास के साथ कहने लगे, 'पता नहीं, यहां क्या-क्या होने लगा है। रिश्तेदारों ने आना-जाना, मिलना-जुलना बंद ही कर दिया है। रमा का कुछ पता नहीं लगता। आधी-आधी रात को क्लब से लौटता है। लड़की है, सो जाने किसके साथ घूमा करती है ! अच्छा होता कि मैं भी तुम्हारी अम्मा के साथ दुनिया से उठ जाता। यह दिन देखने के लिए बैठा तो न रहता !'

लड़की कौन ? राजुल ? पहले की वह दब्बू, सकोची लड़की क्या इस हद तक आजाद हो चुकी है ? मैंने अपनी प्रश्न-भरी दृष्टि बुआ की तरफ उठाई तो पाया कि वह आंचल से मुंह दबाए अपनी रुलाई रोकने में लगी हैं। बाबूजी थकावट के मारे आंखें बंद कर हांफ रहे थे।

इस नई उलझन में डूबा मैं चुपचाप ड्राइंगरूम में आ बैठा। खिड़की के अखरोटी रंग के नक्काशीदार शीशे से छनकर झिलमिलाती हुई धूप का एक टुकड़ा कार्पेट के छोर पर फैल आया था। सामने की दीवार पर अम्मा का तैलचित्र लगा था। उधर देखते-देखते जाने कब मेरी आंखों से आंसू टपकने लगे। अम्मा के साथ-साथ हमारी पूरी दुनिया ही जैसे बदल गई थी। घर में कोई भी तो खुश नजर नहीं आता था। और ऊपर से देखो तो हर जगह समृद्धि दिखाई देती है। सजावट पर आंखें नहीं टिकतीं, यह मजाक नहीं तो और क्या है ?

बुआ के आने के पूर्व मैं अपनी आंखें पोंछ चुका था। बुआ आकर उदास-सी चुपचाप मेरे सामने बैठ गईं। कुछ क्षणों के असमंजस के बाद उन्होंने पूछा, 'क्या तुम्हें उदय ने चिट्ठी में कुछ लिखा था विजय ?'

'जी नहीं। आप तो उसे मुझसे ज्यादा अच्छी तरह जानती हैं बुआ, वह इस तरह की बातें नहीं लिख सकता है...।'

'तो फिर ?'

मैं अभी भी उनसे नाराज था कि उन्होंने मुझसे उदय के बारे में सब छिपाया क्यों। रुष्ट स्वर में ही मैंने कहा, 'अभी उसी के पास से आ रहा हूं। तब भी उसने खुलकर नहीं कहा। मुझे सिर्फ अंदाज लगा।' बुआ के चेहरे पर व्यथा के चिह्न आ गए थे। वह पूछने लगीं, 'वहीं से आए हो ? कैसा है उदय ? ठीक से रह रहा है न ?'

'आपने तो देखा होगा, जाती हैं न उससे मिलने ?' मैंने पूछा। वह बोलीं, 'कौन, मैं ? नहीं तो। मीठापुर में हमारे एक रिश्ते की ननद हैं, उन्हीं के यहां चिट्ठी लिखकर बुला लेती हूं कभी-कभी। अपने घर का पता तो वह बतलाता ही नहीं। कहां रहता है ?'

'मछुआटोली के पास है...।'

'तो, ठीक रहता है न ? कैसा इंतजाम है वहां ?'

वह उतावली के साथ पूछ रही थीं। मैंने जानबूझकर उन्हें चोट पहुंचाने के लिए कहा, 'हां, ठीक है। रहने के लिए एक कोठरी है। रोटी वगैरह खुद बना लेता है। इससे ज्यादा और चाहिए क्या उसे ! —आखिर उसकी क्या गत बना रखी है तुमने बुआ ? तुम लोगों का इतना रुपया-पैसा सब कहां गया ?'

बुआ ने आंखों में आंसू लिए धीरे-धीरे सब सुना डाला। कैसे बुआ ने फूफा के मरने पर बड़े फूफा से भैया के कहने पर बंटवारा करवा लिया। उदय का हिस्सा उनके साथ रहा और भैया खेती-बाड़ी का प्रबंध कुछ दिन करवाते रहे। उदय के होस्टल का खर्चा भी एक साल तक उन्होंने दिया। फिर अचानक एक दिन पता चला कि खेत, बगीचा सब बेच डाला गया है। उदय को रुपये देना भी भैया ने बंद कर दिया। ...उन पर विश्वास करके हम दोनों कहीं के नहीं रह गए थे। बदन के जो गहने रह गए थे, वही बेच-बेचकर उसे पढ़ा रही थीं। अपने पैरों पर खड़ा हो जाए तो उन्हें कोई चिंता नहीं रहेगी फिर।

मैं अवाक् सब सुनता रहा। क्या भैया ने इन लोगों के साथ इतना

बड़ा विश्वासघात किया ? यह सारा ठाटबाट उसी की बदौलत है ? मैंने चारों तरफ देखा । हर चीज मुझे मुंह चिढ़ाती प्रतीत हुई । इस घर को अपना कहने में भी मुझे तो अब शर्म आएगी ।

तभी बुआ ने कहा, 'देखो विजय, भैया से यह सब मत कहना—उन्हें बहुत दुःख होगा । कल के मरते बेचारे आज ही मर जाएंगे...।'

'नहीं बुआ, यह छोटी बात नहीं है । उन्हें जानना ही चाहिए ।'

मैंने कहा तो बुआ बेहद चिंतित हो गईं । मेरा क्रोध तो जाने कब बह गया था, उनके प्रति बड़ी करुणा हो आई । भाई और देवर के प्रेम के जिस द्वन्द्व को वह इतने दिनों से इतनी खामोशी से झेल रही थी, वह आश्चर्यजनक था । उन्होंने घुटते-से स्वर में कहा, 'नहीं, नहीं...भैया को कुछ हो न जाए ! गुस्से में वो वैसे ही पागल हो उठते हैं ।'

'मुझ पर विश्वास नहीं है ? मैं क्या उनका बुरा चाहूंगा ?' कहकर मैं बाबूजी के कमरे की ओर बढ़ा तो वह भी पीछे-पीछे आने लगी । मैंने उन्हें बाहर ही छोड़कर कमरे का दरवाजा बंद कर दिया, दूसरे दरवाजे से विदा मामा को बाहर किया और फिर बाबूजी के पास जाकर भूमिका बनाने लगा, 'बाबूजी, आपकी तबीयत ज्यादा खराब न हो जाए इस-लिए आपसे बहुत-सी बातें छिपा ली जाती हैं । आप वादा करिए कि शांत मन से सुनेंगे तो मैं कुछ बताऊं ।'

बाबूजी ने मेरे चेहरे पर देखा, फिर बोले, 'मैं जानता नहीं हूं, तब भी मुझे इतना पता है कि घर में कुछ हो रहा है, जो नहीं होना चाहिए था । नये ढंग से खाने-पीने और पहनने-ओढ़ने को मैं बुरा नहीं कहता । मगर, यही चीजें जब जीवन का केंद्र होकर रह जाती हैं, तब बहुत कुछ टूटने लगता है । तुम कहो—मैं हर बात साफ-साफ समझना चाहता हूं । कम-से-कम दिमाग में हर समय जो उलझन बनी रहती है, वह तो नहीं रहेगी ।'

सुनने के बाद बाबूजी देर तक आंखें बंद किए लेटे रहे । मुख पर बेहद पीलापन फैल आया था और माथे की नसें हमेशा की तरह सिकुड़ गई थीं । मुझे अचानक डर होने लगा—बाबूजी को सचमुच कुछ हो न रहा हो । पर तभी बाबूजी ने आंखें खोलीं और धीरे से बोले, 'सफलता

की दौड़ में तो रमा जीत गया, मगर इन्सानियत की दौड़ में हार गया। मुझे ज्यादा सदमा इसलिए नहीं पहुंचा कि पहले से ही मुझे शुवहा था। मेरे पुराने दोस्त कभी-कभार हालचाल पूछने आते थे तो कुछ न कुछ भनक लगती थी। रमा की प्रैक्टिस तो खास चल नहीं रही थी। चलने वाले वकील को इतनी मौज-तफरीह का वक्त मिलता है? गड़वड़ी तो कहीं न कहीं होनी ही थी।'

वावूजी थोड़ी देर सोचते रहे, फिर वोले, 'ठीक है, मैं सारी प्रॉपर्टी के वंटवारे के कागज वनवाता हूं, उदय को मेरा हिस्सा मिलेगा।'

'यह इन्साफ नहीं होगा वावूजी···कायदे से उन लोगों का दो हिस्सा होना चाहिए, एक वुआ का और एक उदय का। मेरा हिस्सा वुआ को मिलना चाहिए।'

वावूजी की आंखें भर आईं। फिर उन्होंने कहा, 'तुम्हारी वात ठीक है विजय, लेकिन हम सवों को रहना भी तो तुम्हारे ही साथ है—मैं, तुम्हारी वुआ···वहनों की शादी···रमा का अव क्या भरोसा है! और तुम्हारी वुआ भी नहीं मानेगी, मैं जानता हूं।'

मैंने हल्के मन से दरवाजा खोला। वुआ छटपटाती, आशंकित-सी दरवाजे से लगी खड़ी थीं। मैंने उन्हें अंदर खींच लिया, 'वावूजी को कुछ नहीं हुआ वुआ! लेकिन वह तुमसे नाराज हैं। उनसे छिपाई क्यों यह वात?'

वुआ वावूजी के पास दौड़कर जिस तरह रोने लगीं और वावूजी उनके सिर पर हाथ फेरने लगे, मैं वहां खड़ा नहीं रह सका, हट आया।

☐

शाम को भैया के आने पर मैंने उन्हें अपना और वावूजी का इरादा वताया। भैया पहले तो गुमसुम सुनते रहे, फिर वोले, 'वैठ जाओ।'

अपनी कानून की मोटी किताबों के पीछे कहीं से उन्होंने वोतल निकाली और सीधे-सीधे कुछ घूंट पीकर वे सामने वैठ गए। वैठने के वाद उन्होंने वड़े हल्के ढंग से वात शुरू की, 'भई, मैंने जो कुछ किया

था, सबके लिए किया था। तुम्हीं लोग इसके खिलाफ हो तो मुझे क्या? बाबूजी तो खैर पुराने खयाल के हैं। मगर हैरत है कि तुम भी पैसे की अहमियत नहीं समझते!'

इसके साथ ही पैसे के महत्व पर उन्होंने अच्छा-खासा लेक्चर दे डाला। मुझ पर कोई प्रभाव न देखकर वह बोले, 'खैर, बंटवारे की कोई जरूरत नहीं है'''जो कुछ है, बुआ, उदय, सबका बराबर रहेगा। फिलहाल दूसरा मकान, जो मैंने स्टेशन रोड पर खरीदा है, उदय के नाम करवा देता हूं। किरायेदारों से उसे सात-आठ सौ रुपये माहवार मिलते रहेंगे।'

कहने के साथ भैया कुछ भावुक हो आए, 'मैं तुम लोगों से अलग रहने की तो सोच भी नहीं सकता! और, तुम्हारी भाभी—वह तो जान दे देगी! उसे क्या मैं जानता नहीं हूं? उदय से मैं खुद जाकर माफी मांग लूंगा।'

'सच?'

खुशी मेरे अंदर समा नहीं रही थी। इतनी जल्दी और आसानी से हर बात सुलझ जाएगी, यह मेरी कल्पना से बाहर था। मैंने कहा, 'तो आज ही चलिए न भैया! उदय को साथ लिवा आएंगे! आज रात उसने मुझे खिचड़ी की दावत दी है, आप भी चलिए।'

'ऐज यू लाइक!' भैया मुस्कराकर बोले, 'मैं ये तो भूल ही गया था कि तुम उदय पर जान देते हो! सो यू विन'''।'

'नहीं'''आखिरी जीत आपकी ही रही। दूसरा कोई पाया हुआ इतनी आसानी से छोड़ देता? अब मुझे आप पर गर्व है भैया!'

मैं सचमुच भैया के पैरों पर झुकने लगा था कि उन्होंने मुझे बांहों में भरते हुए कहा, 'अरे, अब तुम आ गए हो तो मुझे क्या फिक्र है! जो भी होगा, संभाल ही लोगे।'



बाबूजी ने कथा का आयोजन पहले से भी धूमधाम से करवाया।

अपने कागजों में रखी एक लंबी लिस्ट में से नाम देख-देखकर हर तरफ आदमी भेजा। बहुत-से पुराने लोगों से मिलकर मुझे भी खुशी हुई। आंगन लोगों से भर गया। पूजा पर बैठने के लिए मुझे ही उपवास करवाया गया था। सवेरे से भाभी, राजुल सभी मुझे फल, दूध और चाय पूछ-पूछकर देती गई थीं, मगर इस समय मुझे चाय की तलब लग रही थी और किसी को मेरी याद ही नहीं आ रही थी। मैंने राजुल को तलाश किया तो पाया कि वह और मंजुल अपनी सहेलियों से घिरी हैं। बुआ प्रसाद के लिए फल काटने बैठी थीं। हारकर मैं भाभी के पास ही पहुंचा, जो नये बने चूल्हे पर सब्जी छौंक रही थीं। उनके पास हल्के काम की हरी जार्जेट की साड़ी में बैठी एक युवती आटे की लोई बना रही थी। पंडितानी उन्हें बेलती जा रही थी।

'भाभी, पूजा पर बैठने से पहले मुझे चाय तो पिला दीजिए!'

मैंने कहा तो भाभी के साथ वह युवती भी चौंककर मुझे देखने लगी। मुझे उसका चेहरा पहचाना-सा लगा। भाभी से पूछ पाता, इससे पहले ही उन्होंने कहा, 'अच्छा, अभी लेकर आती हूं। तुम इधर ही रहना।'

चौंकती आंखों पर गिरती लंबी बरौनियों के आकर्षण को मैं फिर से याद करने लगा था। भाभी ने अचानक कहा, 'कौन जाने, तुम्हारी कसौटी पर पूरी उतरने के लिए ही उसने अपने को बदल लिया हो।···मगर बेचारी को कहां पता है कि अब कसौटी ही बदल गई है! अब तो तुम्हें खुद ही मेम चाहिए—ठीक कह रही हूं न?'

मजाक करके भाभी हंसने लगी, पर मैं! यह जानते हुए भी कि भाभी ने मजाक में ही ऐसा कहा था, मेरा जी अचानक धड़कने लगा। एक अजीब-से नशे ने मुझे जैसे घेर लिया, 'क्या यह सच हो सकता था कि निम्मी मेरे लिए···?'

पूजा के समय भी मेरी आंखें उसे ही खोजती रहीं। यहां तक कि पास बैठे उदय ने पूछ लिया, 'किसी को खोज रहे हो क्या?'

'नहीं, देख रहा हूं कि भैया अभी तक अंदर नहीं आए।' मैंने जल्दी से कह दिया।

कथा समाप्त होने के बाद पंगत में हम लोग खाने बैठे तब लवली, मेरे साथ बैठी थी। राजुल, मंजुल और दो-तीन अन्य लड़कियां परोस रही थीं। अचानक लवली पुकार उठी, 'निम्मी दी, मीठी चटनी···!'

मैं निम्मी को करीब आते देखता रहा। वह चटनी डालकर हटी थी कि मैंने कहा, 'थोड़ी और···।'

उसने चौंककर मेरी तरफ देखा तो मुझे हंसी आ गई। वह सकोच के साथ झुकी, पत्तल पर ढेर-सी चटनी डाली और भागती चली गई।



इसके आठ-दस दिनों बाद वह फिर दिखाई दी। उस दिन मैं ओठों में गुनगुनाते हुए सीढ़ियां चढ़ रहा था, जब राजुल के कमरे से सिसकियों की आवाज सुनाई दी। मैंने दरवाजा खोलकर थोड़ा-सा झांका, राजुल औंधे मुंह लेटी बेतहाशा रो रही थी। हिचकियों में उसकी पीठ लगातार कांप रही थी। अभी-अभी तो राजुल नीचे थी। शायद बुआ ने किसी बात पर टोक दिया होगा। कितनी मनचली हो भी तो गई है।

किसी लड़की का फोन आ गया तो घंटों बातें ही करती रह जाती है। किसी लड़की को बुलाकर अचानक कहीं बाहर निकल जाती है। न भाभी से पूछना, न बुआ या बाबूजी से। वही हरकत मंजुल की है। भाभी कुछ भी नहीं कहती हैं, बुआ जरूर कभी-कभी अपनी नाराजगी व्यक्त कर देती हैं···ठीक ही करती हैं। मैंने ज्यादा कुछ पूछने की जरूरत नहीं समझी—सीधा जाकर उसे गुदगुदाने लगा। कहा, 'पहले हंसो, फिर बतलाओ, क्या हुआ? कुछ बतलाना चाहिए न! ऐसे रोने से क्या फायदा, जो किसी को दिखाई ही न दे?'

वह अचकचाकर उठ बैठी, और तभी मैंने देखा, वह राजुल नहीं, निन्नी थी।

'अरे, तुम! माफ करना, कल राजी यही साड़ी पहने थी, इसी से मैंने समझा कि···आइ'म सॉरी!'

मैं हड़बड़ाहट में बाहर निकलने लगा, फिर लगा कि सभ्यता के नाते कुछ तो पूछना ही चाहिए। वह शर्माई-सी पल्लू से अपनी आंखें सुखा रही थी। मैंने पूछ लिया, 'मगर, तुम रो क्यों रही हो? मैं कुछ कर सकता हूं?'

वह कुछ नहीं बोली।

'तुम मुझसे नाराज हो?' मैंने पिछली बातों को याद करके कहा। इस बार वह धीरे से बोली, 'नहीं तो···?'

मेरे मन से एक बड़ा भार-सा उतर गया। अपने पीछे दरवाजा भिड़काकर मैं वापस नीचे आया और राजुल को ढूंढ़ने लगा। वह आंगन के एक कोने में धूप में बैठी आराम से बुनाई कर रही थी। मैंने पुकार-कर कहा, 'अरे भई, तुम्हारी सहेली ऊपर रो रही है और तुम यहां बैठी बुनाई कर रही हो! तुम्हारी वाली साड़ी पहने थी, मैं तो समझा कि तुम्हीं हो···।'

'ओ, समझी···!' राजुल हंसने लगी, 'तो आप पूछने चले गए! वो बनारसी साड़ी पहनकर आई थी गुस्से में, इसीलिए मैंने बदलवा दिया···।'

'बनारसी साड़ी, गुस्से में?'

राजुल ऊन का गोला संभालती मेरे पास आकर कहने लगी, 'हां, हुआ यह कि मणि दी के चचेरे देवर से निन्नी की शादी ठहराई जा रही थी। आज वे लोग सपरिवार निन्नी को देखने तीन-चार दिनों का प्रोग्राम बनाकर आ धमके।'''इधर निन्नी ने क्या किया कि बिना बाल संवारे, कपड़े बदले सामने आकर खड़ी हो गई। दीदी ने डांटा तो खूब सारे गहने और बनारसी साड़ी-वाड़ी पहनकर उन लोगों के सामने होती हुई यहां चली आई। कहती है कि जब तक वे लोग चले नहीं जाएंगे, घर ही नहीं जाएगी। दीदी के डांटने पर रो रही है बैठी। कितना चुप कराया, चुप ही नहीं हो रही है! तो मैंने कहा कि भाई रो ही लो तुम, जो भर के'''।'

मुझे इस सारी घटना पर थोड़ी हंसी भी आई। मैंने कहा, 'वाह! अच्छी सहेली हो तुम! मेरा खयाल है कि उसे दूल्हा पसंद नहीं होगा, इसीलिए रो रही है। तुमने ठीक से पूछा नहीं होगा'''।'

'नहीं, यों तो कहती है कि जिससे भी शादी होगी, वह उसे पति मान लेगी। उसे सिर्फ लड़की देखने का यह तरीका पसंद नहीं आ रहा है। ठीक तो कहती है! अपने ही घर में चौबीसों घंटे सज-धजकर, सावधान होकर कौन रह सकता है?'

'तो बगावत करके भाग आई हैं मेम साहब!' मैंने मुस्कराकर कहा।

राजी ने उपेक्षा के साथ कहा, 'मेम साहब वो जब थी, तब थी। जिसके पल्ले लोग बाघ दें, बंध जाने वाली को मैं तो देहातिन कहूंगी। आपने ठीक से देखा नहीं न'''कैसे फटीचर ढंग से रहती है अब। अपनी सहेलियों के बीच बिठाने में भी मुझे तो झेंप लगती है।'

मैंने आश्चर्य से राजुल को देखा। ऊपर लो कट चुस्त ब्लाउज, स्कर्ट के नीचे खुली टांगें और लंबे चमकदार क्लिप से कंधे पर रखे बाल'''अच्छा ही था कि निन्नी मुझे इस वेशभूषा में नहीं मिली थी। पर मैं निन्नी के बारे में इस तरह क्यों सोच रहा था? मैंने अपने को संयत कर कहा, 'अच्छा-अच्छा! तुम्हें तो अपनी सहेली मानकर आती है न वह'''उसे चुप तो कराओ!'

'भाभी ही उसे चुप कराएंगी। मुझसे ज्यादा वह भाभी की ही सहेली है।' राजुल अक्खड़ ढंग से बोली और चली गई।

मुझे अचानक राजुल पर तेज गुस्सा आने लगा। भैया ने सचमुच इसका दिमाग खराब कर दिया है। अपने सामने किसी को कुछ समझती ही नहीं।

पर राजुल से हटकर मेरा विचारक्रम फिर निन्नी की ओर मुड़ गया। क्या सचमुच उसका ब्याह उन लोगों के घर होगा, जिन्हें लड़की देखने का भद्र ढंग भी नहीं आता है? कैसा होगा वह लड़का? वह निन्नी की कद्र कर सकेगा?

अचानक मुझे लगा कि मैं उस अनजाने युवक के प्रति ईर्ष्या से भरता जा रहा हूं। क्यों वह निन्नी को हम सबों से छीनकर दूर ले जाएगा? कहीं निन्नी यहां आकर इसीलिए तो नहीं रो रही थी कि···?

भाभी से मैंने पूछा तो वह बोलीं, 'अभी उसे अपने साथ लिवा जाऊंगी और ठीक से दिखाकर साथ ले आऊंगी। ऐसे पता नहीं वे लोग क्या सोचते होंगे कि किसके घर गई है।'

भाभी टेबल पर खाना लगवा रही थीं, पर मेरी भूख मर चुकी थी।



मैं ड्राइंगरूम में ही गजलों का एल० पी० लगाकर आंखें आधी बंद किए चुपचाप बैठा था। आवाज और सुरों का जादू जाने कब मुझे बहाकर एक अनजान किनारे पर ले आया, जहां आशिक की मनुहार थी, प्रेम और सौंदर्य का संसार था, टूटे दिलों की कहानियां थीं। पता नहीं कैसे हर शब्द आज मुझे इतना स्पर्श कर रहा था—हर अर्थ इतना स्पष्ट था, जैसे सिर्फ मेरे लिए इनकी रचना हुई हो। मेरे ही लिए गाने वाले ने गले में इतना दर्द भरकर गाया हो। मुझे महसूस हो रहा था, जैसे कि मैं बदल गया हूं। क्या हो रहा था मुझे? क्या मुझे प्रेम हो

गया था निन्नी से ? नहीं, प्रेम तो शायद था, आज उसे खोने देने का उद्वेग मन में आ समाया था। मुझे अंदर से कोई इसके लिए मजबूर कर रहा था। आज नहीं कहा तो फिर कभी नहीं कह पाऊंगा। कुछ घंटों के अंदर ही वह किसी की वाग्दत्ता हो जा सकती थी ! मैं व्यग्रता से उठा और सीढ़ियों की तरफ भाग लिया। अपने कमरे में ड्रेसिंग टेबल के सामने बिठाकर भाभी निन्नी का शृंगार अपने हाथों से कर रही थीं। वह जमीन पर बैठी निन्नी के पांवों में आलता लगा रही थी। चौड़ी सुर्ख किनारी की अंगूरी साड़ी और झिलमिलाते जेवरों के बीच दमकती निन्नी उदास ढंग से दीवार पर लगी तस्वीर देख रही थी। पलंग पर बैठी लवली एकटक निन्नी के मुख पर ताक रही थी। कुछ देर मैं ठगा-सा देखता रहा, फिर भाभी को पुकार लिया, 'भाभी, एक मिनट सुनिये जरा।'

'आती हूं···।' भाभी ने जरा-सा मुड़कर कहा और रंग लगाती रहीं। मैं हटकर रेलिंग के पास खड़ा हो गया था। भाभी ने कुछ देर बाद बाहर झांककर कहा, 'क्या है बबुआजी ? कोई जरूरी बात है ?'

'हां, इधर आइए···।'

भाभी को कुछ दूर ले जाकर मैंने कहा, 'भाभी, मेरी होने वाली बीवी को तुम दूसरों को दिखाने ले जा रही हो। यह अच्छी बात है ?'

भाभी ने मेरी तरफ झुंझलाकर देखा, 'ओफ्फोह ! ये भी कोई मजाक का वक्त है ? मुझे ऐसे ही देर हो रही है।'

वह जाने लगी तो मैंने कहा, 'सुनिए तो भाभी, मेरी तरफ देखिए —मैं क्या मजाक करता दिखाई दे रहा हूं ?'

भाभी ने ठमककर मेरी तरफ देखा और कुछ देर तक देखती ही रह गईं। फिर ताज्जुब से बोली, 'क्या कह रहे हो तुम ? क्या सचमुच···?'

'भाभी, आप एक बार उससे मेरे सामने पूछिए, अगर उसे इनकार न हो तो मैं···।'

भाभी को अब जाकर यकीन आया हो जैसे। बोली, 'अरे, तो उससे क्या पूछना—मैं तो चाचाजी से लड़कर उसे ले आऊंगी। अभी

ण से मिल आती हूं।'

'नहीं, उसकी राय जानना मेरे लिए जरूरी है।' मैंने कहा।

'तो फिर तुम्हीं पूछ लो न, जाओ !'

मुझे उधर भेजकर उन्होंने लवली को वाहर बुला लिया।

कुछ क्षण वाद निन्नी मेरे सामने थी। उसने चौंककर मुझे देखा और उठने को हुई तो मैंने कहा, 'वैठो निन्नी ! तुमसे एक वात पूछनी थी।'

'जी ?' उसने आंखें उठाकर पहली वार मुझे सीधा देखा।

'मैं तुम्हारे साथ शादी करूं तो'''तुम्हें इनकार तो नहीं होगा ?'

निन्नी लाज से दोहरी हो गई।

'मैं तुम्हारा जवाव सुनकर ही जाऊंगा। वोलो, तुम्हें इनकार तो नहीं है ?'

निन्नी निश्चल-सी वैठी रही और मेरा दिल धड़कता रहा—कहीं वह इनकार न कर दे। तभी निन्नी ने मेरी तरफ आंखें उठाईं और स्पष्ट स्वर में वोली, 'मुझे इनकार क्यों होगा ?'

'तुम्हें चिढ़ाया जो करता था।'

'और जो फोटो दे गए थे ?'

मैंने हंसकर कहा, 'तुमने देखा था ?'

निन्नी ने सिर हिलाया, 'मेरे पास अव भी है।'

'वड़ी खराव तस्वीर थी। मुझे दे देना, तुम्हें दूसरी दूंगा'''।'

निन्नी ने शरारत के साथ कहा, 'तस्वीर क्यों लूंगी अव ?' कहकर वह हल्के से मुस्कराई।

वाहर निकलकर मैं भाभी की तरफ देखकर हंसा तो वह खुश होकर हंसने लगीं। वोलीं, 'फिर तो निन्नी को अभी ही पहुंचाना होगा।'

९. राजुल

हर शाम कुछ देर को ऊपर की बालकनी पर अकेली बैठती हूं। सुबह से ओढ़ा गया व्यस्त और कुशल लेडी डॉक्टर का मुखौटा थोड़ी देर के लिए उतारकर अपनी असली जिंदगी से साक्षात्कार करती हूं। आज चाय का प्याला हाथ मे उठाते ही दिखाई पड़ा कि आसमान के बीचोबीच एक इंद्रधनुष खिंच गया है। अलग रंगो की रेखाओ को गिनते हुए अचानक बचपन और किशोरावस्था के कई क्षण मूर्त हो उठे है। लॉन की हरी घास, कांटेदार तारो को घेरे हुए मेहंदी की बाड़, पार का झाऊ का पेड़ और फिर यह इंद्रधनुष ''बालकनी के इस कोने से सारा कुछ दिखाई दे रहा है। कुछ देर को मुझे हल्केपन का आभास होता है। फिनायल, ईथर और सड़े घावो की बू, रोगिणियो की कतारें और अस्पताल की बंधी हुई एकरस दिनचर्या का बोझ कही दूर छूट जाता है। अपनी सारी उपलब्धिया ऐसे क्षणो मे इंद्रधनुष के रगों मे ही रगी दिखाई पड़ती हैं। कार, बगला, मान-प्रतिष्ठा, कातर मुद्रा मे सामने खड़े अनेकानेक चेहरे'''हवा के साथ चकरघिन्नी खाता हुआ अपना आपा आकाश मे बहुत ऊंचा उठ जाता है। इस क्षण भी यही लग रहा है कि इंद्रधनुष के साथ आकाश पर खुद मेरा वजूद टगा हुआ है, लेकिन बस, दो-चार ही क्षण'''फिर इन खुशनुमा रगो के साथ भी वही उखड़े होने की अनुभूति कि पावों को कोई आधार कभी नही मिलेगा अब !''' नियति के सकेतों पर दिशाहीनता की स्थिति में ऐसे ही डोलते रहना होगा ! एक थरथराहट आरपार बेधने लगती है ''हाथ-पैर सहसा शक्तिहीन हो उठते हैं। व्यस्तता के क्षणो में यह अनुभूति दूर रहती है, एकाकी होते ही घेरने लगती है।'''चाय का प्याला ट्रे मे रखकर मैं क्षितिज के उस कोने से निगाहें फेर लेती हूं और नीचे उतर आती हूं।

वेडरूम से डाइनिंगरूम और किचन तक का चक्कर लगा जाती हूं।

'आया, वो नीली साड़ी प्रेस कर दो और नीली सैंडल पर ब्रश करके रखो···दूसरा टॉवेल निकालकर यहां टांगो, कितनी वार यह सव समझाना होगा तुम्हें ?'

'जी, गलती हो गई मेम साहव !'

'महावीर ! आज पनीर ले आना, मटर-पनीर और करेले की कलौंजी वना लेना···।'

'जी, वहुत अच्छा सा'व !'

'और तुम्हारे सारे डव्वों के ढक्कन गंदे हो रहे हैं, कल साफ हो जाने चाहिए, समझे ?'

'जी···।'

महावीर का चेहरा अपराधी-सा हो आया है। आया सहम गई है। वैसे तौलिया ठीक है। ढक्कन भी ऐसे गंदे नहीं हैं, मगर कुछ तो होना ही चाहिए कि यह मुर्दनी, यह जड़ता टूटे···घवराहट का यह दौर खत्म हो। यह भी क्या कि आदमी को कोई शिकायत ही न हो ! मुझे कुछ और दूसरे पारिवारिक समारोहों में आई हुई औरतों की याद हो आती है। अपने पति की लापरवाहियों और वच्चों की शरारतों तथा फर्माइशों से त्रस्त होने की चर्चा करती हुई वे कितनी खुश, कितनी पूर्ण लगती हैं ! कानों में सारे सुने हुए डायलॉग वजने लगते हैं, 'वच्चों के मारे घर में सफाई तो रह ही नहीं पाती···वो धमाचौकड़ी मचाते हैं कि वस !'

'अरे भई, वच्चों से वढ़कर तो उनके वाप हैं !···वक्त पर चप्पल या जूते का जोड़ा ही नहीं मिलेगा। वटन रोज तोड़कर आ जाएंगे···।'

'हमारे ये तो कहीं चश्मा भूल आते हैं, कहीं रूमाल···घर में आकर हाय-तौवा मचाते हैं···।'

'पूछो मत ! मेरा तो रोज सुवह-शाम का यही कार्यक्रम रहता है कि पूरे घर में से फैली हुई कितावें और अखवार समेटो ! सव पढ़ते हैं और मजे से छोड़कर चल देते हैं।'

इन चर्चाओं के वीच में भूले से पास पहुंच जाती हूं तो वे अटपटा

महसूस करती हैं। कोई हंसकर कह देती है—'सबसे मजे में तो डॉक्टर साहिबा हैं···न कोई झंझट है, न फिक्र ! सर्वेन्ट्स भी खूब ट्रेंड हैं इनके। हमारे यहां तो जो नौकर आता है, वह भी बच्चों के साथ बिगड़ जाता है···।'

इच्छा होती है कि कहूं, एक दिन के लिए भी इस चिंतामुक्त जीवन का बोझ तुम लोगों से उठाए नहीं उठेगा। अपने भीतर की कचोट को छिपाकर मैं गर्वपूर्ण मुस्कराहट के साथ दो-चार शब्द कहती हूं और पुरुष-वर्ग के बीच जा बैठती हूं। धीमी फुसफुसाहटों के टुकड़े यहां-वहां तैरकर मुझे कुरेदते रहते हैं।

'एकदम मर्दानी औरत हैं···हम लोगों के साथ तो इन्हें अच्छा ही नहीं लगता !'

'अरे नहीं···अनमैरिड हैं न···इट इज बट नैचुरल !!' इसके साथ धीमी अर्थपूर्ण हंसी के कतरे।

'अब शादी कर लेनी चाहिए इन्हें···इतने लोग तो आंखें बिछाये हुए हैं, पता नहीं कैसा पति खोज रही हैं !'

'खोजेंगी नहीं ? इतनी काबिल हैं और इतनी खूबसूरत···।'

'तो क्या हुआ···रहना तो इसी धरती पर है न !'

मैं सुनती हूं, और पर्त दर पर्त उदासी मेरे भीतर समाती चली जाती है। हां, धरती पर ही रहना है ! वैसे भी, आसमान में उड़ना मैंने कब चाहा था ! पर, जाने कौन-सा क्षण था, जब मैंने महसूस किया कि धरती पर सिर्फ पुरुष रहते हैं···ऐसे पुरुष, जो अपने स्वार्थ और दंभ का नगाड़ा बजाते हुए सारी धरती को रौंदते रहते हैं, बिना परवाह किए कि कौन चोट खाता है या आहत होता है। औरतें यहां धरती पर नहीं, गृहस्थी की सुरंग में दबी-ढकी रह सकती हैं या अपने अंदर की गहराइयों में दुबकी, घबराई, धरती की सतह से कई बालिश्त नीचे···। जो मेरी तरह पुरुषों की बराबरी में खड़ी होना चाहती हैं, वे जख्मी होती हैं। मैं भी जख्मी हो रही हूं, सिर्फ अपने लिए नहीं, अपने जैसी सारी स्त्रियों के लिए। इसीलिए मैं स्त्री भी नहीं रही—मर्दानी औरत हो गई हूं। न मैं पुरुषों में बैठकर पुरुषों की-सी बातें कर सकती हूं, न

स्त्रियों में बैठकर स्त्रियों की-सी···

अपने भीतर ही भीतर मैं देर तक उफनती रही हूं, फिर बारी-बारी से उन 'जनानी औरतों' के चेहरों को टटोल जाती हूं—कितनी खुश, कितनी सुरक्षित और मुक्त दीखती हैं वे अपनी-अपनी सुरंगों में! अनायास ही सोचने लगती हूं कि समय के साथ कितना थोड़ा-कुछ बदला है। पहले का बंद चिड़ियाखाना आज खुले बोटैनिकल गार्डन में बदल गया है, बस! कुछ ज्यादा जमीन दे दी गई है। थोड़ा मुक्ति का आभास, थोड़ा नैसर्गिक परिवेश भी बनावटी ढंग से जमा दिया गया है, लेकिन बीच में सलाखें और खाइयां तो अब भी हैं। जब तक इन्हें महसूस न करो, खुश रह लो तुम सब!···मेरा अपराध यह है कि मैं खाई पार करके इस ओर आ गई हूं। अब मुझे वापस उन सलाखों में डालने के लिए हौका पड़ रहा है और, उस हौंके में तुम सब भी शामिल हो। हां···तुम औरतें भी! लेकिन मैं अब उधर आऊंगी नहीं। मैं असुरक्षित हूं, अभावग्रस्त भी हूं, मगर मुक्त हूं···सचमुच मुक्त!!

मैं अगली व्यस्तता ओढ़ने को तैयार होती हुई पुकारती हूं—'आया, मरीजों को भेजो!'

पीड़ित रक्तहीन चेहरों वाली रोगिणियां एक-एक करके मेरे चैंबर में आने लगी हैं और मेरे भीतर का उफान उन पर बरसने लगा है—'बिल्कुल रेस्ट करना है आपको। ब्लडप्रेशर भी काफी 'लो' है···अगर रेस्ट नहीं ले सकतीं तो फिर यहां आने की क्या जरूरत?···आपके पति दस-पंद्रह दिन भी आपका ख्याल नहीं रख सकते?···तो फिर जाइए, होइए शहीद अपनी गृहस्थी पर!···आप लोगों को तो इसी में मजा आता है!'

वह औरत भौचक्की होकर मुझे देखने लगती है। पता नहीं क्यों, मैं उनके सीखचों पर भी मुक्के बरसाने लगती हूं जबकि वे स्वयं प्राण-पण से उनसे चिपटी हुई हैं।···आसपास की औरतें दयापूर्ण दृष्टि से मुझे देखने लगती हैं। वे शायद मुझे व्यथाग्रस्त और ईर्ष्यालु समझती हैं···तो समझें! मुझे कभी-कभी गुस्सा आता है, मगर अधिकतर तो दया ही आती है इन बेचारियों पर!

□

निन्नी से भी कुछ ऐसी ही बहस हो गई थी मेरी। पत्नी और मां बनने के बाद निन्नी की प्रखरता कम हो गई हो, ऐसा नहीं था; पर शायद मेरी प्रखरता ही बढ़ गई थी। निन्नी की वह दृढ़ता, वह मौलिकता जिसके आगे मैं किसी समय दबी-दबी रहती थी, न जाने कब मुझमें दूनी-तिगुनी होकर समाती चली गई थी। कभी-कभी तो लगता है कि वह जानबूझकर मुझसे पराजित हो जाती है। वह इस अपराधबोध से बुरी तरह ग्रस्त है कि उसकी वजह से मेरी जिंदगी के सपने अधूरे रह गए। मैंने तो कई तरह से उसे विश्वास दिलाने की कोशिश की कि जो कुछ हुआ, उसके लिए मैं खुद ही हूं। यह न हुआ होता तो मैं आज सफलता के इस शिखर पर कब पहुंच पाती ?···आखिर एक रास्ता छोड़कर ही तो दूसरे रास्ते पर बढ़ा जा सकता है ? मगर, निन्नी यह मानने को कब तैयार है ! उसे यकीन दिलाना आसान नहीं है कि मेरे अभावों की छाया तक मुझे नहीं छू पाती, इस हद तक संतुष्ट हूं मैं जीवन की इन ढेर सारी उपलब्धियों से। अभाव शायद होते ही ऐसे हैं ···आंखों की खिड़की से झांककर अपनी दयनीयता दिखला जाते हैं और होंठों की मुस्कराहट तथा लंबी-चौड़ी बातों के झीने पर्दे को धीरे से चीरकर रख देते हैं। निन्नी भी मेरी बातों की हां में हां मिलाती हुई सुन लेती है, पर निगाहें उसकी मेरी आंखों के झरोखे पर ही टिकी रहती हैं। तभी तो वह बार-बार छोटे भैया के साथ मेरी खोज-खबर लेने आ जाती है। आने पर कभी पिक्चर का कार्यक्रम बना लेती है, कभी पिकनिक का और कभी घर पर ही छोटी-मोटी पार्टी आयोजित कर लेती है। पार्टी के लिए कारण की कमी भी उसे नहीं पड़ती।—'डॉ० राजलक्ष्मी ने परसों बड़ा डिफिकल्ट ऑपरेशन पूरा किया है···उसी खुशी में···।' कुछ नहीं तो—इट इज जस्ट ए मीटिंग टुगेदर···डॉ० राजलक्ष्मी बहुत दिनों से आप लोगों को इनवाइट करना चाह रही थी, मगर खुद अरेंज करने की फुर्सत इन्हें नहीं मिलती थी···।

निन्नी तो एक पार्टी देकर चली जाती और बदले में मुझे कई पार्टियों में जबर्दस्ती जाना पड़ता। दूर रहकर भी वह मेरे एकांत को तोड़ते रहने का प्रबंध कर जाती है...

उस बार हम लोग नाइट शो देखकर लौटे थे। छोटे भैया बाथरूम गए हुए थे। जूड़े से कांटे निकालकर ड्रेसिंग टेबल पर रखती निन्नी ने कहा, 'जरा-सी जिद की वजह से दोनों की जिंदगी चौपट होकर रह गई...बच्चे को अलग तकलीफ हुई। थोड़ा झुक ही जाती बीवी तो क्या हर्ज था?'

अभी-अभी हम लोग जिस पिक्चर से लौटे थे, उसका कथानक कुछ ऐसा ही था। एक जिद पर पति-पत्नी दोनों का अड़ जाना, वर्षों का अलगाव, एकांत और घुटन...बिखराव की मनःस्थिति।

मैंने उत्तर में कहा, 'लेकिन, दूसरी जिंदगी की जिम्मेवारी हमेशा पत्नी पर क्यों आती है? क्यों नहीं यही बात पुरुष सोचता है?'

इसके बाद हम दोनों बहस में उलझ गए थे। निन्नी बोली, 'दोनों में से कोई भी झुक सकता है, लेकिन पुरुष में स्वाभिमान ही नहीं रहा तो फिर क्या रहा? आन ही तो पुरुषों की खासियत है।'

'अच्छा, आन का मतलब क्या है? बतलाओ तो...।'

'आन मतलब जिद...और क्या!' वह बोली।

'ठीक है, आन मतलब जिद। मगर तुमने कभी सोचा है कि पुरुषों में यह आन आती कहां से है? छोटे बच्चों में यह फर्क क्यों नहीं होता? लड़की भी उसी तरह जिद करती है, जिस तरह लड़का करता है। लेकिन लोग क्या करते हैं! लड़के की जिद पूरी कर देते हैं और लड़की को मारपीटकर चुप करा देते हैं...कहते हैं कि उसे दूसरे घर जाना है, दबकर रहना सीखना है...। ऐसा ही व्यवहार लड़कों के साथ हो तो कहां रहेगी पुरुषों की यह खासियत?'

'लेकिन बात ठीक भी तो है। दूसरे घर जाकर लड़कियां अगर बात-बात में जिद करती रहें...।'

'ससुराल वाले उसे दूसरे घर की समझें ही क्यों? अपनी ही बेटी जैसी क्यों न मानें?'

'मगर सोचो, पुरुषों में यह चीज न हो तो कौन रक्षक रहेगा ? इस आन के लिए ही न लोग अपनी जान पर खेल जाते हैं...।'

'तो आन के लिए स्त्रियां क्या जान पर नहीं खेलतीं ? जौहर पुरुषों ने किए थे या स्त्रियों ने ? आत्महत्या ज्यादा स्त्रियां करती हैं या पुरुष ? सवाल यह है कि स्त्रियां अपनी रक्षा खुद करने में समर्थ क्यों न बनाई जाएं ? उनके लिए रक्षकों की जरूरत ही क्यों महसूस हो ...रक्षक, जिनमें से अधिकतर तो आज भक्षक हो गए हैं !

'भई, औरतों के शरीर की बनावट ही कोमल है।'

'निम्नवर्ग और किसान-मजदूरों की जो करोड़ों स्त्रियां हाडतोड़ मेहनत करती हैं, वह इस कोमलता के बल पर ही न...।' मैंने व्यंग्यपूर्वक कहा—'वो भी तब जब कि उनके खाने-पीने पर हमेशा कम से कम ध्यान दिया जाता है ! क्या तुम मान लोगी कि वे औरतें ऑफिस में काम करने वाले बाबुओं से कोमल और कमजोर हैं ?...यह सब परिस्थिति और अभ्यास पर निर्भर करता है। मजदूरों की बात जाने दो, शहरों में क्या यह नहीं हो रहा है ? पुरुष दफ्तर या कॉलेज-कचहरी से आते हैं तो जहां पांव फैलाकर आराम करते हैं, वहीं ऑफिस या स्कूल से आने वाली पत्नी आते ही गृहस्थी के कामों में जुट जाती है...तब क्यों नहीं पुरुष उठकर उसकी मदद करता है कि वह कोमल है, उसे अधिक आराम की जरूरत है ?'

'यह तो औरतें खुद करती हैं...वे स्वभाव से ही त्यागमयी और स्नेही जो होती हैं...।'

मुझे अचानक गुस्सा आ गया। यह निन्नी भी उन्हीं स्त्रियों की तरह सोचती है...जंजीरों को आभूषण और सीखचों को सजावट यह भी समझती है। मैंने उसे आगे कहने नहीं दिया, जोर से बोली, 'यह भी गलत है !...औरत अपनी संतान के लिए त्याग करती है या उनके लिए, जिसे वह प्रेम करती है...लेकिन ऐसा तो पुरुष भी करते हैं। अगर स्त्री स्वभाव से त्यागमयी और प्रेममयी होती तो सास-ननदें मिलकर बहुओं की हत्या न किया करतीं...सौतेली मां के किस्से प्रचलित न होते...भाई-भाई में बंटवारे न होते। यह झूठी दलील है। सच तो

यह है कि स्त्री हर घड़ी असुरक्षा की भावना से ग्रस्त रहती है, इसलिए जैसे भी हो, अप्रिय स्थिति से बचना चाहती है।…यह असुरक्षा की भावना उसे ईश्वर ने नहीं, समाज ने दी है। समाज कभी स्त्री को बराबर का दर्जा नहीं देता…।'

'लेकिन गृहस्थी में दोनों बराबर हैं…कोई न ज्यादा है, न कम… …न बड़ा है, न छोटा…!'

निन्नी के कहने पर मुझे हंसी आ गई—'यही मानती हो तो फिर क्यों कहती हो कि औरत को ही झुककर समझौता कर लेना चाहिए, पुरुष को नहीं…।'

निन्नी निरुत्तर होकर मेरा मुंह ताकने लगी थी। छोटे भैया जाने कब आकर कुर्सी पर बैठ गए थे। अचानक उनकी तालियों से हमारा ध्यान भंग हुआ—'हीयर, हीयर! आज की डिबेट में डॉ० राजलक्ष्मी की जीत हुई…नंदितादेवी हार गईं। लेकिन, हारने पर भी मेरे खयाल से फायदा नंदितादेवी को ही मिलेगा, क्योंकि अब कभी हम लोगों का झगड़ा हुआ तो आज के फैसले के अनुसार मैं बिना शर्त आत्मसमर्पण कर दूंगा।'

हंसने को हम सभी साथ ही हंसे थे, पर अचानक कुछ मेरे भीतर चुभ भी गया था। हां, डॉ० राजलक्ष्मी हर जगह जीतती गई है, जीतती जा रही है, पर इस जीत से उसे हासिल क्या हो रहा है? खुशी का एक कतरा भी तो नहीं! सिर्फ गर्व की पर्त पर पर्त बिछती जा रही है…बोझ और भी बढ़ता जा रहा है…

छोटे भैया ने तभी गंभीर होकर पूछ लिया, 'एक विशाल के अन्याय की वजह से तुम मैन हेटर हो गई हो क्या राजी?…जो कुछ तुम अभी कह रही थीं, वे तुम्हारे विचार कम, भावना अधिक थे…नहीं?'

सहसा पूछे गए इस प्रश्न ने मुझे कैसा सहज बना दिया था। कुछ देर के बाद ही मैं कह पाई—'अन्याय कैसा? प्रेम न कर पाने को अन्याय तो नहीं कहा जा सकता! और, कुछ था भी तो उसका प्रतिकार तो मैंने तभी कर लिया!'

'तब भी, तुम उस हादसे से मुक्त नहीं हो सकी हो अब तक…दीज

आर आफ्टर एफेक्ट्स ! नहीं तो तुम भी क्यों नहीं विशाल की तरह गृहस्थी बसाकर स्वाभाविक जीवन बिताती हो ? इसमें समाज तुम्हें कब रोक रहा है ?···निन्नी इसी हार-जीत की बात कर रही थी। जहां सचमुच प्रेम होता है, वहां तुम हारकर भी जीत जाती हो··· और···।'

कहते-कहते वे अचानक रुक गए थे। मेरे चेहरे का वह आहत भाव, वह तिलमिलाहट और स्मृतियों का जलजला कुछ न कुछ उन्होंने भी महसूस किया होगा।

ठीक ही कह रहे थे वे। पुरुष अपने को आसानी से बाहरी दुनिया की कई धाराओं में बांट देता है, जबकि नारी के भीतर बाहरी सब काम निपटाते हुए भी एक ही अंतर्धारा बहती है। प्रेम की इस कमजोरी को लेकर कोई जीत कैसे सकता है !···समाज और दुनिया-भर के सारे पुरुषों को लानत भेजने के बाद भी क्या मैं विशाल की याद को अपने से अलग कर पाई थी ?



सुबह सक्सेना साहब का फोन आया—'डॉक्टर, आपके भरोसे मैंने अपनी छोटी सिस्टर को डिलीवरी के लिए यहां बुला लिया है, ट्यूबक्टोमी भी करनी है। यह उसका थर्ड इशू होगा। कहिए तो उसे लेकर हाजिर हो जाऊं ?'

सक्सेना साहब पिछले वर्ष यहां पी० डब्लू० डी० में इंजीनियर होकर आए थे। कई जगह पार्टियों में उनसे मुलाकात हुई थी। एक बार बच्चे के जन्मदिन में उनके घर भी जाना हुआ था। मेरे यहां हुई पार्टी में भी वे सपत्नीक आए थे। मजाक-पसंद आदमी थे। आने पर उन्होंने मुझे छेड़ा था : आपने तो सबको निराश कर दिया डॉक्टर ! हम लोग कोई बढ़िया खबर सुनने आए थे—शादी, मंगनी, सगाई···कुछ भी !

सभी लोगों ने उनके समर्थन में कुछ न कुछ बोलना शुरू कर दिया था। तब निन्नी ने आगे आकर कहा था : वह दिन भी जल्दी ही आएगा,

यह है कि स्त्री हर घड़ी असुरक्षा की भावना से ग्रस्त रहती है, इसलिए जैसे भी हो, अप्रिय स्थिति से वचना चाहती है।···यह असुरक्षा की भावना उसे ईश्वर ने नहीं, समाज ने दी है। समाज कभी स्त्री को वरावर का दर्जा नहीं देता···।'

'लेकिन गृहस्थी में दोनों वरावर हैं···कोई न ज्यादा है, न कम······न वड़ा है, न छोटा ··!'

निन्नी के कहने पर मुझे हंसी आ गई—'यही मानती हो तो फिर क्यों कहती हो कि औरत को ही झुककर समझौता कर लेना चाहिए, पुरुष को नहीं···।'

निन्नी निरुत्तर होकर मेरा मुंह ताकने लगी थी। छोटे भैया जाने कव आकर कुर्सी पर वैठ गए थे। अचानक उनकी तालियों से हमारा ध्यान भंग हुआ—'हीयर, हीयर! आज की डिवेट में डॉ० राजलक्ष्मी की जीत हुई···नंदितादेवी हार गई। लेकिन, हारने पर भी मेरे खयाल से फायदा नंदितादेवी को ही मिलेगा, क्योंकि अव कभी हम लोगों का झगड़ा हुआ तो आज के फैसले के अनुसार मैं विना शर्त आत्मसमर्पण कर दूंगा।'

हंसने को हम सभी साथ ही हंसे थे, पर अचानक कुछ मेरे भीतर चुभ भी गया था। हां, डॉ० राजलक्ष्मी हर जगह जीतती गई है, जीतती जा रही है, पर इस जीत से उसे हासिल क्या हो रहा है? खुशी का एक कतरा भी तो नहीं! सिर्फ गर्व की पर्त पर पर्त विछती जा रही है··· वोझ और भी वढ़ता जा रहा है···

छोटे भैया ने तभी गंभीर होकर पूछ लिया, 'एक विशाल के अन्याय की वजह से तुम मैन हेटर हो गई हो क्या राजी?···जो कुछ तुम अभी कह रही थीं, वे तुम्हारे विचार कम, भावना अधिक थे···नहीं?'

सहसा पूछे गए इस प्रश्न ने मुझे कैसा सहज वना दिया था। कुछ देर के वाद ही मैं कह पाई—'अन्याय कैसा? प्रेम न कर पाने को अन्याय तो नहीं कहा जा सकता! और, कुछ था भी तो उसका प्रतिकार तो मैंने तभी कर लिया!'

'तव भी, तुम उस हादसे से मुक्त नहीं हो सकी हो अव तक···दीज़

आर आफ्टर एफेक्ट्स ! नहीं तो तुम भी क्यों नहीं मिसाल की तरह गृहस्थी बसाकर स्वाभाविक जीवन बिताती हो ? इसमें समाज तुम्हें कब रोक रहा है ?···निम्मी इसी हार-जीत की बात कर रही थी। जहां सचमुच प्रेम होता है, वहां तुम हारकर भी जीत जाती हो··· और···।'

कहते-कहते वे अचानक रुक गए थे। मेरे चेहरे का वह आहत भाव, वह तिलमिलाहट और स्मृतियों का आवेग कुछ न कुछ उन्होंने भी महसूस किया होगा।

ठीक ही कह रहे थे वे। पुरुष अपने को आसानी से बाहरी दुनिया की कई धाराओं में बांट देता है, जबकि नारी के भीतर बाहरी सब काम निपटाते हुए भी एक ही अंतर्धारा बहती है। प्रेम की इस कम-जोरी को लेकर कोई जीत कैसे सकता है !···समाज और दुनिया-भर के सारे पुरुषों को लानत भेजने के बाद भी क्या मैं मिसाल की याद को अपने से अलग कर पाई थी ?

□

सुबह सक्सेना साहब का फोन आया—'डॉक्टर, आपके [illegible] अपनी छोटी सिस्टर को डिलीवरी के लिए यहां बुला लिया है, [illegible] पड़ोसी की बहनी है। यह उसका पहला इश्यू होगा। कहिए तो उसे लेकर हाजिर हो जाऊं ?'

सक्सेना साहब पिछले वर्ष यहां [illegible] होकर आए थे। कई समारोह पार्टियों में उनसे मुलाकात हुई थी। [illegible] बच्चे के जन्मदिन में उनके घर भी जाना हुआ था। [illegible] में भी वे सम्मिलित आए थे। मजाक-पसंद आदमी हैं। आते पर उन्होंने मुझे छेड़ा था—आपने तो सबको निराश कर दिया डॉक्टर ! हम और कोई बढ़िया खबर सुनने आए थे—शादी, सगाई, वगैरह कुछ भी।'

सभी लोगों ने उनके समर्थन में कुछ न कुछ कहकर मुझे घेर लिया था। तब निम्मी ने आगे आकर कहा था [illegible]

घबराइए मत ! तब आप लोगों को इस तरह फोन करके थोड़े ही न बुलाया जाएगा···गोल्डन लेटर्स में छापकर इन्विटेशन कार्ड भेजा जाएगा और शहनाई की आवाज नुक्कड़ पर से ही आपका स्वागत करेगी।··· फिलहाल, इस पार्टी को उस पार्टी की भूमिका समझ लीजिए···

—ठीक कहा···हो सकता है, आज ही कोई पसंद आ जाए डॉक्टर को !

—अरे भई, तब तो ज्यादा से ज्यादा बैचलर्स को इनवाइट करना चाहिए था···

अच्छा-खासा हंगामा रहा उस दिन।

'जरूर ! आ जाइए उन्हें लेकर···।' मैंने फोन पर कहा।

'कब सूट करेगा आपको ?'

'जब कहिए···अस्पताल में दिन के बारह बजे तक या शाम को घर पर···।'

'अस्पताल में ही आ जाता हूं।'

'ठीक है, इंतजार करूंगी।' मैंने कहा और फोन रख दिया। सक्सेना साहब करीब ग्यारह बजे आए। अपनी पत्नी और बहन को मेरे पास छोड़कर ऑफिस चले गए। सक्सेना की बहन खूब गोरी पर कुछ लम्बोतरे चेहरे और छोटी आंखों वाली नाटी स्त्री थी। कानों में खूब बड़ी-बड़ी बालियां, जैसी कभी कॉलेज के दिनों में मैं पहनती थी, गले में डिजाइन वाली नेकलेस, चटख नारंगी रंग की साड़ी और हरा नारंगी बॉर्डर का ब्लाउज। मैं जब तक सामने रखे कागजों और रजिस्टर में उलझी रही, मिसेज सक्सेना बतलाती रहीं—'इनके हस्बैंड खुद डॉक्टर हैं···गया में पोस्टेड हैं, लेकिन वहां ऑपरेशन वगैरह का उतना अच्छा इंतजाम नहीं है। पटना भेजने को तैयार थे, लेकिन देखभाल करने के लिए किसी औरत का होना जरूरी है न···इनकी ससुराल से कोई आने वाला नहीं था। मुझे लिखा। अब यहां अलग दस प्रॉब्लम हैं। बच्चों के एग्जाम शुरू होने वाले हैं, कुक काम छोड़कर चला गया··· मैंने सक्सेना साहब से कहा तो तय हुआ कि यहीं ले आया जाए। आप हैं ही···।'

'कोई बात नहीं, चिंता मत करें'''मुझसे जो कुछ हो सकेगा, जरूर करूंगी'''।' मैंने व्यावसायिक लहजे में कहा।

जांच करने के बाद मैंने ऑपरेशन-पूर्व की सभी जांच करवाने के लिए लिखा और उन्हें विदा किया। चले जाने के बाद भी सक्सेना साहब की बहन कुछ देर याद में बनी रही। मंजुल में कुछ समानता-सी थी। उसी तरह इठलाकर भाव-भंगिमा के साथ अंग्रेजी लहजे में हिंदी बोलना, बालों के कृत्रिम छल्ले और बार-बार कपड़े संभालना'''शायद ऐसा ही मैं भी पहले किया करती थी। अपने रूप और आकर्षण के प्रति एक अतिरिक्त सजगता! आज दूसरे में देखकर कैसी हंसी-सी आ रही है! शायद मुझे और निन्नी को आमने-सामने रखने पर विशाल को भी ऐसा ही महसूस हुआ होगा एक दिन। निन्नी का उदाहरण देकर उसने मुझे समझाना चाहा होगा और मेरे व्यवहार से खिन्न होकर उसकी ओर मुड़ गया होगा। विशाल ने इसी तरह का एक पत्र मुझे लिखा था—वह मुझसे प्रेम करता था, इसीलिए चाहता था कि दुनिया की हर अच्छाई मेरे अंदर आ जाए'''लोगों को दिखाना चाहता था कि वह संसार का सबसे भाग्यशाली पुरुष है। मैंने उस पत्र को भी समझने से इन्कार कर दिया था। उसने मुझमें कमी देखी कैसे? लोग तो जिसे चाहते हैं, उसकी बुराइयों को भी उसका गुण समझते हैं! फिर उसने मुझे तोला भी किससे था, निन्नी से। जिससे ऊपर उठने में मैंने अपनी सारी ताकत लगा दी थी।'''मेरा और विशाल का, दोनों का ही बचपना था। विशाल ने कुछ वर्ष और शादी न की होती, किसी और तरीके से समझाया होता तो मैं शायद समझ भी जाती।'''लेकिन अब'''अब क्या हो सकता था?

विशाल और वह पूरा प्रकरण मुझे बार-बार याद आता रहा। तब मुझे कहां पता था कि जल्दी ही विशाल से मेरी मुलाकात होने वाली है।



सक्सेना की बहन रति सिन्हा का ऑपरेशन इसके ग्यारहवें दिन

हुआ। प्राइवेट वार्ड के उस कमरे में अगले दिन सहायक डॉक्टर और स्टाफ नर्स के साथ घुसते ही दिखाई दिया कि मिसेज सक्सेना के साथ और कोई नहीं, विशाल ही बैठा था। मैं कुछ क्षण को वहीं ठिठक गई। तभी मिसेज सक्सेना ने पुकार लिया—'आइए डॉक्टर, नमस्कार! इनसे मिलिए, रति के हस्बैंड, डॉ० विशाल सिन्हा···।'

विशाल को मैंने जरा-सा मुड़ते और फिर उसके चेहरे की पेशियों को कसते देखा। पहले मैं ही संभली, पास आकर बोली, 'गुड मॉनिंग! ···मुझे पता नहीं था कि ये आपकी वाइफ हैं।···कैसे हैं आप? कहां हैं आजकल?'

विशाल ने बतलाया कि वह पिछले तीन वर्षों से गया में नियुक्त था। सफल ऑपरेशन के लिए उसने मुझे धन्यवाद दिया, फिर दवा आदि के बारे में पूछने लगा।

'अरे! आप लोग परिचित हैं···?' मिसेज सक्सेना पूछने लगीं।

'बहुत अच्छी तरह।' कहकर विशाल ने थोड़ा हंसकर मेरी तरफ देखा, कुछ कहते-कहते मेरे साथ की डॉक्टर और नर्स की तरफ देखकर रुका और बोला, 'बस, ये समझिए कि अपनी एक गलती से इन्हें खो बैठा! हाउ अनलकी! है न?'

कहकर वह मिसेज सक्सेना के साथ जोर-जोर से हंसने लगा। ओठ भींचकर मैं चार्ट पर झुक गई।···यह उसके लिए हल्के-फुल्के मजाक का विषय रह गया था, पश्चात्ताप का नहीं! बचपन और किशोरावस्था की अन्य अनेक शरारतों की तरह वह मुझे याद करता होगा···अगर करता हो तो, जबकि यही प्रसंग जब भी मुझे याद पड़ता है, दर्द से मैं तिलमिला जाती हूं।

मिसेज सक्सेना निगाहों को गड़ाकर मुझे देखने लगी थीं। मैंने चेहरे को यथासंभव सपाट बनाए रखकर टांकों का निरीक्षण किया··· थोड़ी-सी शिकन इस क्षण मेरे चेहरे पर आई नहीं कि वह चारों तरफ शोर मचा देंगी। नहीं, शोर भी नहीं···कान से कान की फुसफुसाहटें कि मेरे अब तक कुंआरे रहने का रहस्य वह जान गई हैं।···कोई दूर का आदमी भी नहीं, खुद उनकी ननद का पति! मेरी कीमत पर वह

काफी दिनों तक महत्त्वपूर्ण बनी रह सकती हैं !

मेरी ओर से कोई उत्तर न पाकर वह गंभीर हो उठा—'सचमुच, बड़ी खुशी हुई तुम्हें देखकर ! सुना कि खूब नाम है यहां तुम्हारा···!'

मैंने थोड़ा-सा सिर उठाया और संयत मुस्कराहट के साथ कहा, 'सब आपकी मेहरबानी है···।' कहकर मैं खुद चौंक गई। वह भी ठिठककर देखने लगा। हमारी दृष्टि एक क्षण के लिए मिली, फिर मैं नर्स को निर्देश देने लगी। मैंने ऐसा कहा था औपचारिकतावश ही, पर क्या वह सिर्फ औपचारिकता थी या अतीत के किसी पृष्ठ को मैंने खोलकर धर दिया था ?···शायद मेरे स्वर में व्यंग्य था, शिकायत थी। कमरे से निकलते समय एक बार फिर मैंने अपने को संयत कर लिया और उससे बोली, 'अच्छा डॉक्टर ! फिर मुलाकात होगी।'

इस मुलाकात की स्मृति को मैं घर आने तक अपने से दूर किए रही, पर घर आने पर कुछ बुरी तरह कचोटता रहा। क्यों नहीं मैं विशाल से कुछ मधुरता से पेश आई ? बार-बार आंखों में भरकर वह किस तरह देख रहा था ! अपने घर आने का निमंत्रण भी देना चाहिए था उसे, थोड़ी देर का साथ तो रहता··· फिर सो जाने कब मुलाकात हो कि न हो ! शाम होते-होते मैं उदासी और पश्चात्ताप की अनुभूति से बुरी तरह घिरी रही। एक बार टेलिफोन तक हाथ भी गया कि फोन करके विशाल को आमन्त्रित कर लूं, पर ऐसा करने में झिझक महसूस हुई। ऐसी ही मनःस्थिति में थी जब कॉलबेल बजी। आया ने दरवाजा खोला और मिठाई का एक बड़ा डिब्बा तथा कार्ड लिए वापस आ गई। विशाल का ही कार्ड था। मेरी सारी उदासी एक पल में छट गई।

'उन साहब को ड्राइंगरूम में बिठाओ···।' उत्साह के साथ मैंने कहा। आया शायद मेरी इस प्रतिक्रिया पर चौंकी हो, पर मुझे उसकी तरफ देखने की फुर्सत कहां थी ! तौलिया खींचकर बाथरूम की ओर भागते-भागते बोली, 'दो कप कॉफी तैयार करवा लो।'

साड़ी बदलकर, मुंह पर पाउडर का स्पर्श और कपड़ों पर सेंट का स्प्रे देकर मैंने माथे पर नन्ही-सी बिंदी सजाई तो अहसास हुआ कि हाथ ही नहीं, सारा जिस्म कांप रहा है मेरा। कुछ देर अपने-अ ·

गलियां

संभालने में लगी, तब ड्राइंगरूम में गई। विशाल दीवार पर लगी बड़ी पेंटिंग को ध्यान से देख रहा था। मेरी आहट पाकर मुड़ा तो अचकचा-कर खड़ा हो गया और विस्मय-विमुग्ध मेरी तरफ देखने लगा।

'तशरीफ रखिए···आप ऐसे अचंभे से क्या देख रहे हैं?'

'अचंभे की बात ही है···उम्र के साथ-साथ तुम जैसे और खूबसूरत होती जा रही हो···और, मैं तो इस रूप का पुराना प्रशंसक हूं।'

'ठीक है, तारीफ के लिए शुक्रिया···। बैठिए तो···इतनी ढेर सारी मिठाइयों की क्या जरूरत थी? कौन खाएगा यहां?'

विशाल पहले से कुछ भारी बदन का हो गया था। बाल कम हो गए थे। ठुड्डी के पास भराव आने के कारण चेहरा कुछ-कुछ बदला-सा था। वह बोला, 'जरूरत तो थी···या, चाहो तो समझ लो कि तुमसे फिर मिलने का बहाना है! और, अगर यह उलझन है कि कौन खाएगा तो हम साथ दे देते हैं···।'

मैं हंस दी। आया तभी कॉफी रख गई। मैंने उससे प्लेट में मिठाइयां भी निकाल लाने को कहा और हम कॉफी पीने लगे। वह मुझसे रमा भैया, भाभी और मेरी कुछ सहेलियों के बारे में पूछता रहा। मैंने भी पूछा कि वह विदेश गया था कि नहीं···उसकी मां, बहन आदि का क्या हाल है···उसके पिताजी अब भी प्रैक्टिस करते हैं या नहीं। दो दुनियादारों की तरह बातें करते हुए हम दोनों ही शायद अपने-अपने भीतर उमड़ते उन सवालों से बचने की कोशिश कर रहे थे, जो हम वास्तव में एक-दूसरे से करना चाह रहे थे। आखिर उसी ने पूछा, 'मेरा ख्याल है कि तुम्हें मेरे खत मिल गए थे···।'

मैंने सर हिला दिया।

'तो, जवाब क्यों नहीं दिया? जवाब तो देतीं कम से कम!'

'मैं तब जवाब सोच ही नहीं पाई थी···।'

'क्या मतलब?'

'गुस्से में आदमी साफ सोच कब पाता है···? मेरे लिए इतना जान लेना ही काफी था कि···यू डिडंट लव मी!'

'वट आई डिड लव यू!'

वह चोट खाई दृष्टि से मुझे कई पल तक ताकता रह गया। मैंने मुस्कराने की कोशिश की—'छोड़िए भी ! गड़े मुर्दे उखाड़ने का क्या फायदा ?'

विशाल अचानक बहुत गंभीर नजर आने लगा। कुछ क्षण रुककर बोला, 'ठीक कहती हो, कोई फायदा नही है···लेकिन तुम ? तुम तो इससे भी आगे चली गई हो···मुर्दों को ममी के रूप मे सजाए बैठी हो। अभी तुम्हारे आने से पहले मैं उस अलमारी की सजावट देख रहा था। एक खास बात मुझे नजर आई है···भाभी के साथ रमा भैया की तस्वीर, नंदिताजी के साथ उदयजी की तस्वीर और, तुम्हारी तस्वीर के बगल मे डिब्बे मे रखी वह छोटी रिस्टवाच, जो मैंने कभी तुम्हें भेंट मे दी थी··· और, अगर मैं भूलता नही तो जो साड़ी तुमने अभी पहन रखी है, वह भी पुरानी साड़ी है, जिसके लिए मैं कहा करता था कि तुम इस साड़ी मे इतनी अच्छी लगती हो कि मैं सुहागरात के दिन भी तुम्हें यही साडी पहनाऊगा।···यह सब क्या है डॉक्टर साहिबा ? अपनी जिंदगी का मकबरा बनाकर इसमे खुद को कैद कर रखने मे क्या तुक है ?'

निराशा के साथ-साथ मैं एक सकून का भी अनुभव कर रही थी। जाने कैसे सोच लिया था कि विशाल अपनी पुरानी गलती के लिए क्षमा-याचना करेगा···फिर से उन बीते क्षणो को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न करेगा···उस विशेष क्षण के लिए मैं कितनी उत्सुक थी और कितनी भयभीत !

'इस सवाल का जवाब ही पूछने आए हैं आप ?' मैंने निढाल स्वर में पूछा।

विशाल हल्के से मुस्कराया, 'नही, जवाब तो मैं सवेरे ही जान गया था, सिर्फ सवाल के रूबरू तुम्हे खड़ा करने आया था।'

मैं कुछ नही बोल पाई। वही बोला, 'मुझे भी अपनी गलती या नासमझी जो समझो, उसका कम पछतावा नही रहा। मगर, असल मे है क्या कि जीवन के रास्ते आम रास्तो की तरह इस बात का इंतजार नही करते कि तुम कितने कदम चली हो या नही चली हो···एक बार

तुमने उन पर पांव रख दिए तो यंत्र स्वयं चलने लगता है और तुम्हें कहीं न कहीं पहुंचाकर रहता है।···अपने पुराने पड़ाव से चिपटे होने का तुम लाख अपने को यकीन दिला लो···तुम वहां लौटकर कभी नहीं पहुंच सकतीं।···पिछले कालखंड में लौटा ले जाने वाली मशीन अभी तक नहीं बनी है···इसलिए जिंदगी ने मुझे जहां पहुंचाया, मैं पहुंच गया।'

मेरी आंखों में एकाएक ढेर-से बादल उमड़ने लगे थे। मैंने उन्हें खुलकर बरस जाने दिया। विशाल ने भी नहीं टोका, चुप बैठा रहा। कुछ देर के बाद जब मैंने आंखें पोंछ लीं, वह कहने लगा, 'इस तरह चोट पहुंचाने के लिए मुझे माफ करना। मुझे ऐसा करना जरूरी लग रहा था। मुझे देखते ही तुम्हारी आंखों में जो सूनापन समा गया था, उसे पहचानना कुछ मुश्किल नहीं था।···पता नहीं, किस अंधेरी गली में तुम अब तक भटक रही हो!'

मेरे अंदर कुछ टूट रहा था या बन रहा था, कहीं से रोशनी छनकर आ रही थी या अंधेरा गाढ़ा हो रहा था···बस, कुछ अनहोनी होने की अनुभूति घेरती चली जा रही थी। शायद गली आगे मुख्य रास्ते से मिलने वाली थी। ☐